[illegible]

[illegible]

प्रस्तावना

प्राचीन जैनाचार्योंने अपने वीर शिरोमणि आदर्श पुरुषोंकी उपदेशप्रद एवं मनोरञ्जक कहानियाँ लिखकर जैन समाजके लिये बड़ा भारी उपकारका काम कीया है। वास्तवमें उन महा पुरुषोंने अपना सारा जीवन परोपकारके कार्यमें ही व्यय कीया है। इस तरहके उपदेशप्रद ग्रन्थोंकी रचना कर वे अपनेको संसारमें अमर बना गये हैं। हमारा यह ग्रन्थ भी प्राचीन जैनाचार्यका निर्माण कीया हुआ है, जिसका यह अनुवाद है। इसमें शुकराजकी जीवन घटनाओंका उल्लेख कीया गया है। इसके अतिरिक्त प्रसंगोपात उपदेशप्रद बातें भी दी गईं हैं।

प्रायः इस ग्रन्थमें यही बात अधिक दिखाई गई है, कि "संसारमें प्राणीलोग किस तरह कर्म उपार्जन करते हैं और उनका वे किस तरह भोग करते हैं।" शुकराजका सारा जीवन इसी विषयपर वर्णित हुआ है।

शुकराजको जन्म लेतेही जातिस्मरण ज्ञान हो जानेसे अ-पना अपने पूर्व जन्मका सारा वृत्तान्त मालूम हो जाता है। शुक-राजके पूर्व जन्मकी जो रानी थी, वही इस जन्ममें इनकी माता हुई है [illegible] रखते हैं। इस प्रकार [illegible] देखकर वह प-

श्रयंघबित होकर १६ मास पर्यन्त गूँगा बना रहता है। माता पिता उसे रोगग्रस्त समझकर नाना उपचार किया करते हैं। किन्तु शारिरिक व्याधि न होनेके कारण उसका गूँगापन नहीं मिटता है। एक दिन राजा और रानी श्रीदृत्त केवलीके पास आकर अपने पुत्र के गूँगापनका कारण पूछते हैं, इसपर केवली महाराज शुकके पूर्व भवका वृत्तान्त सुनाकर उसे बोलनेके लिये आदेश करते हैं। शुकराज इस प्रकार संसारकी आश्चर्य लीलाको जानकर अपने जन्मदाताओंको माता पिता कह कर पुकारता है। पुत्रका गूँगापन दूर होनेके कारण माता-पिता बड़े ही प्रसन्न होते हैं।

शुकराजके पूर्व भव राजा जितारीके भवमें श्रुतसागर आचार्य महाराजने विमलाचल सिद्धक्षेत्र तीर्थकी महिमा पर धर्मोपदेश दीया वह बड़ा ही उपदेशप्रद है। यह कथा अवश्य पढ़नी चाहिये।

छटे परिच्छेदमें श्रीदत्त और शंखदत्तकी कथा आती है, वह बड़ी ही उपदेशप्रद है। इस कथासे संसारकी असारताका खूब अच्छा परिचय मिलता है। मनुष्य किस प्रकार कुकर्म करता है। और उसे उसका किस तरह बदला मिलता है। यह बात इस कथासे ठीक मालूम हो जाती है। अस्तु,

हमारे प्रेमी पाठकोंसे नम्रनिवेदन है, कि इस पुस्तकके भीतर किसी तरहकी त्रुटि रह गई हो तो उसे सुधार कर पढ़ें।

२०१ हरिसनरोड	आपका
कलकत्ता।	काशीनाथ जैन।

एक दिन, प्रेमियोंके चित्तको चुरानेवाली प्यारी वसन्तऋतुमें राजा अपनी स्त्रियोंको साथ लेकर क्रीड़ा-वनमें विहार करनेके लिये आये। वहाँ आकर राजाने अपनी उन स्त्रियोंके साथ उसी प्रकार जलक्रीडा आदि नाना प्रकारकी क्रीड़ायें कीं, जैसे हस्तिनियोंसे घिरा हुआ हस्ती प्रेमसे विहार करता फिरता है। उस वनमें एक बड़े ही सुन्दर और पुष्पोंके सिरपर लदे हुए छत्रके समान आम्रवृक्षको देखकर राजा उसकी बड़ाई करते हुए कहने लगे,—"हे पुष्पोंके कल्पवृक्ष! मीठे फलोंके देनेवाले आम्रवृक्ष! तेरी छाया संसारको बड़ी प्यारी लगती है, तेरे पत्तोंकी श्रेणी अनुराग मङ्गलको देनेवाली है, तेरी मंजरियाँ मधुर शब्दोंको उत्पन्न करनेवाली हैं, तेरा रूप बड़ा ही सुन्दर है, इसीलिये तो हम लोग तुझे सब वृक्षोंमें प्रधान मानते हैं। हे आम्रराज! तेरा सारा [illegible] प्राणियोंके उपकारके ही निमित्त है, इसलिये तुझसे बढ़कर प्रशंसाका पात्र भला और कौन वृक्ष हो सकता है? उस [illegible] के समूहसे ऊँचे-ऊँचे वृक्षोंको धिक्कार है, जो किसीके काम नहीं आते और उन धनियोंको भी धिक्कार है, जो [illegible] गुणोंके साथ तेरी बराबरी [illegible] गुणोंका [illegible] करते हैं।"

[illegible] इसी समयके पेड़की [illegible] देवकुमारोंके लिये [illegible] [illegible] सुशोभित, [illegible]

जिसके शृंगार-रसके समान् अपनी सखियों स्त्रियोंकी ओर देख-कर राजा कहने लगे—"ओह! विधाताने मेरे ऊपर बड़ी भारी कृपा की है, जो मैंने ऐसी अलौकिक सुन्दरी स्त्रियाँ पायी हैं। इसमें सन्देह नहीं, कि ऐसी स्त्रियाँ संसारमें पुण्यवाले ही किसी प्रकार पा सकेंगे; क्योंकि संसारमें चन्द्रमा जैसी ही स्त्रियाँ हैं— और [illegible] ऐसी स्त्रियाँ मनोहर कहाँ?"

जैसे समुद्रका जल बढ़ जानेसे अपनी मर्यादा छोड़कर बाहर आ जाता है, वैसे ही ऊपर लिखे विचार मनमें उत्पन्न होते ही राजाका चित्त मदसे उछलने लगा। इसी समय उस महलके पेड़की डालपर बैठा हुआ एक तोता, मनका विचार पढ़कर देखने-वाले पण्डितकी तरह तुरत बोल उठा,—"क्या किसी क्षुद्र प्राणीके मनमें गर्व नहीं होता! [illegible] अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनते हैं। टिटिहरी भी आकाशको गिरनेसे बचानेके लिये अपनी टाँगें आकाशकी ओर करके सोती है।"

यह सुनते ही राजाने अपने मनमें सोचा,—"यह तोता तो बड़ा ही ढीठ है। इसने मुझे इस प्रकार गर्व करते देख, मुझे क्षुद्र ही ठहरा लिया। पर नहीं, यह सब कहानी नहीं हो सकती [illegible] [illegible]"

[illegible]

आ पहुँचे। घोड़ेको देखते ही राजा झटपट उसपर आ सवार हु
और उस तोतेके पीछे-पीछे चलने लगे। यद्यपि वहाँ राज
सिवा और भी बहुतसे आदमी मौजूद थे, तथापि राजाके सि
और कोई उस तोतेकी बोली नहीं समझ सकता था। इसीलि
राजाको इस तरह एकाएक घोड़ेपर सवार होकर जाते दे
मन्त्री आदिको बड़ी चिन्ता हुई। वे सोचने लगे,—"यह रा
को एकाएक क्या सूझा, जो इस तरह जल्दीके साथ घोड़ा भग
कर चले जा रहे हैं ?" यही सोचकर मन्त्री आदि कई राजक
चारी बड़ी दूरतक उनके पीछे पीछे चले गये, पर अन्तमें राजा
का कोई ओर छोर नहीं देख, निराश होकर लौट गये।

आगे आगे वह तोता उड़ता जाता था और पीछे-पीछे रा
घोड़ा दौड़ाते चले आते थे। इस तरह जाते-जाते उन लोगों
पाँच सौ योजनका सफर ते कर डाला, पर न जाने किस दै
शक्तिके प्रभावसे न तो राजाको ही कुछ श्रम मालूम हुआ, न उन
घोड़ेको। जैसे कर्मके प्रभावसे मनुष्यको दूसरा जन्म प्रा
होता है, वैसे ही उस दिव्य तिर्यञ्च पक्षीके आकर्षणसे खिंचे हु
राजा एक बड़े भारी जङ्गलमें आ पहुँचे। सच कहा है, कि
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] राजा [illegible]
[illegible]

इसी समय इस [illegible]

तो किसीपर प्रसन्न होते हो, न किसीको कुछ देते हो, तोभी सब लोग तुम्हारी आराधना करते हैं। तुम निर्मम हो—ममतासे परे हो—तोभी इस जगत्के रक्षक हो और निःसङ्ग होते हुए भी इस जगत्के प्रभु हो। तुम लोकोत्तर रूपवान होते हुए भी निराकार हो। हे भगवन्! ऐसे तुमको मैं नमस्कार करता हूँ।"

राजाकी मधुर और ऊँचे स्वरसे की हुई यह स्तुति उसी मन्दिरके पासवाले आश्रममें रहनेवाले गाङ्गिल-ऋषिके कानोंमें भी पड़ी। यह सुनते ही जटा-वल्कल-धारी ऋषि किसी कामके बहाने अरिहन्त महाराजके मन्दिरमें आये। वहाँ पहुँचकर प्रशस्त विद्यासे भरपूर हृदयवाले वे ऋषि, ऋषभदेव स्वामीकी भक्तिपूर्वक वन्दना कर, मनोहर, श्लोकरहित और तत्काल रचे हुए पदोंमें जिनेश्वरकी इस प्रकार स्तुति करने लगेः—

"तीनों लोकोंका उपकार करनेमें समर्थ, अनन्त शोभाओंके स्वामी, हे त्रिजगदेक-नाथ! तुम्हारी जय हो। नाभिराजाके ऊँचे कुलरूपी कमलवनमें विचरनेवाले हंसके समान, मरुदेवा माताकी कोखरूपी सरोवरके राजहंसके समान, हे त्रिभुवन-जनवन्दनीय! तुम्हारी जय हो। जो तीनों लोकोंके मनुष्योंके मनरूपी काकको (चकवेको) शोक-रहित करनेवाले सूर्यके समान हैं; जो अन्यान्य देवताओंके गर्वको खर्व कर निर्मल, निरुपम और निःसीम महिमा-रूपिणी कमलाके विलास करने योग्य कमलाकरके समान हो रहे हैं; आत्मिक स्वभावके रस और ज्ञान-दर्शन-जनित भक्तिकी सम्मिलित प्रेरणाके कारण जिनके पद-

कल्पेश्वर देवता, किन्नर और नरोंके राजा अपने मणिमय मुकुटों-वाले मस्तकको झुकाते हैं, जिन्होंने कामदेव आदि सब विकारोंका ध्वंस कर डाला है, उन तीर्थङ्कर देवताकी जय हो। संसार-समुद्रमें डूबते हुए मनुष्योंको पार उतारनेवाले जहाज़के समान, सिद्धि-वधूके स्वामी अजर, अमर, अचर, अभय, अरज, अपर-म्पर, परमेश्वर, परमयोगीश्वर, हे युगादिजिनेश्वर! मैं तुम्हें श्रद्धा-पूर्वक नमस्कार करता हूँ।"

इस प्रकार हर्षसे प्रफुल्लित चित्तके साथ मधुर भाषामें श्री जिनेश्वरकी स्तुति करनेके बाद वे ऋषि सरल चित्तसे राजासे बोले,—"हे ऋतुध्वज राजाके कुलरूप घरके समान मृगध्वज राजा! आज अकस्मात् मेरे आश्रममें आकर तुम मेरे अतिथि हुए हो, इसलिये मैं बड़े आनन्दके साथ तुम्हारा उचित आतिथ्य-सत्कार करना चाहता हूँ; क्योंकि बड़े भाग्यसे ही तुम्हारे जैसे अतिथियोंका आगमन होता है।"

यह सुन, राजा मन-ही-मन सोचने लगे,—"ये महर्षि कौन हैं? ये क्यों इस प्रकार आग्रहके साथ मुझे अपने आश्रममें लिये जा रहे हैं! मेरा वृत्तान्त इन्हें कैसे मालूम हो गया?" मन-ही-मन यही सब सोचते-विचारते हुए राजा शुद्ध चित्तके साथ ऋषिके पीछे-पीछे चलकर उनके आश्रममें आये। क्योंकि उत्तम पुरुषोंसे किसीका अनुरोध टाले नहीं बनता।

राजाको अपने आश्रममें बड़े आदरसे ले जाकर उन महर्षि ऋषिने बड़े प्रेमसे कहा,—"हे राजन्! तुमने यहां आकर

मुझे बड़ा कृतार्थ किया। अब तुम मेरे कुलके अलङ्कारके समान संसारके जीव-मात्रके नेत्रोंको आनन्द देनेवाली मेरी प्राणोंसे भी अधिक प्यारी कमलमाला नामकी कन्याका पाणिग्रहण करो।

"जो रोगीको भावे, वही वैद्य बतलावे," के अनुसार राजाने ऋषिकी यह प्रार्थना तुरत स्वीकार कर ली। तब ऋषिने अपनी परम रूपवती, युवती और गुणवती कन्या कमलमालाको बुला कर, उसका हाथ राजाको पकड़ा दिया। कहा है, कि शुभकार्य में विलम्ब नहीं करना चाहिये, इसीलिये विवाहकी यह मङ्गल-क्रिया चटपट सम्पन्न कर दी गयी।

राजा परम सुन्दरी ऋषि-कन्याको देखकर बड़े ही प्रसन्न हुए। यह वल्कलके वस्त्र पहने हुई थी, तोभी बड़ी सुन्दरी मालूम पड़ती थी। कमलमालाके प्रति राजहंसकी प्रीति होना, तो ठीक ही है। उस समय हर्षसे भरे हुए हृदयके साथ तपस्वियोंने विवाहके सारे मङ्गलाचार किये और स्वयं गाङ्गिल ऋषिने अपने हाथों ब्याहकी सब रस्में पूरी कीं। इस प्रकार राजाके साथ अपनी कन्याका विवाह करनेके बाद, ऋषिने कमल छुड़ाते समय उन्हें पुत्र-प्राप्तिके निमित्त एक मन्त्र बतलाया। मुनिके पास दहेज में देने योग्य और कौनसी चीज़ था? विवाह-सम्बन्धी सब कार्य हो चुकनेपर राजाने ऋषिसे कहा,—"मुनिवर! मैं राज्य का एकदम सूना छोड़कर बड़ी जल्दीसे यहाँ चला आया हूँ, इस लिये अब आप शीघ्रही मेरे यहाँसे प्रस्थान करनेका प्रबन्ध कर दीजिये।"

ऋषि,—"हम वनों फिरनेवाले मुनियोंके पास रखाही क्या है, जो तुम्हारी विदाईके लिये विशेष तैयारी करेंगे! तुम्हारे इन राजसी वस्त्रों और अपने वल्कलके वस्त्रोंको देखकर मेरी पुत्री मन-ही-मन उदास हो रही है। इसके सिवा मेरी यह कन्या लड़कपनसे ही तपस्विनियोंकी तरह वृक्षोंका सिञ्चन ही करती रही है, इसलिये बड़ी ही भोली-भाली है। तथापि इसके चित्तमें तुम्हारे प्रति अगाध स्नेह भरा हुआ है, क्योंकि यह भली भाँति जानती है, कि स्त्रीके लिये स्वामी ही सब कुछ है। अतएव तुम ऐसा करना, जिसमें इसे अपनी सौतियोंके हाथों दुःख न उठाना पड़े।"

राजा,—"महर्षे! दुःखकी क्या बात है? मैं इसे ऐसे आदरसे रखूंगा, कि इसे कभी दुःख-दर्दका नाम भी मालूम नहीं होने पावेगा। अपने वचनोंकी रक्षा मैं सदैव करता रहूंगा।"

इस प्रकार प्रेमके साथ ऋषिके संग बातें करनेके बाद चतुर राजाने तपस्विनियोंकी ओर देखते हुए कहा,—"यहाँ तो पहननेके योग्य वस्त्रोंका भी टोटा है पर अपने नगरमें पहुंचकर मैं आपकी पुत्रीके सभी अरमान पूरे कर दूंगा।"

यह सुनकर ऋषिको बड़ा खेद हुआ। उन्होंने उदासीके साथ कहा,—"राजन्! तुम्हें विदित है, कि मैं विरक्त [illegible] [illegible] [illegible] वस्त्रोंका भी [illegible] यह कहते कहते [illegible] उनकी आंखोंसे आंसू [illegible] मैंने [illegible] देखते [illegible] और [illegible]

पड़े, जैसे बादलोंसे पानीकी बूँदें टपकती हैं। यह देख, सबको बड़ा अचरज हुआ और वे लोग सोचने लगे, कि यह लड़की बड़ी ही सौभाग्यवती है।

आजतक कल्पवाले वृक्षोंसे फल और बादलोंसे पानी ही बरसते देखा था, पर आसमानसे वस्त्राभूषणोंका बरसना आजही देखनेमें आया! सच है, पुण्यके बलसे क्या नहीं हो जाता! पुण्यके बलसे बहुतेरे आश्चर्यमें डालनेवाले काम हो जाते हैं। कहा भी है, कि—

> "पुण्यैः सम्भाव्यते पुंसामसम्भाव्यमपि क्षितौ।
> तेरुर्मेरुसमाः शैलाः किं न रामस्य वारिधौ॥"

अर्थात्—पुण्यके योगसे जगत् में अनहोनी बातें भी हो जाती हैं। क्या रामचन्द्रके लिये मेरुके समान बड़े-बड़े पर्वत भी समुद्रमें नहीं तैर गये थे?"

इसके बाद राजा अत्यन्त हर्षित चित्तसे ऋषि और अपनी पत्नीके साथ-साथ फिर उस मन्दिरके भीतर गये और प्रभुकी स्तुति करते हुए बोले—"हे प्रभो! मैं फिर परम उत्सुक होकर आपके दर्शन करने आया हूं। आज तो आपकी यह मूर्ति मेरे हृदयमें पत्थरपर खिंची हुई लकीरकी तरह अमिट भावसे अङ्कित हो गयी है।" यों कह जिनेश्वर भगवानके चरणोंमें नमस्कार कर, बाहर आकर राजाने ऋषिसे पूछा,—"महात्मन्! अब कृपा कर आप मुझे यहांसे जानेकी राह बतला दीजिये।"

ऋषिने कहा,—"रास्ते आदिकी बात मुझे नहीं मालूम।" राजाने कहा,—"तो फिर आपने मेरे नाम आदिका कैसे पता पा लिया था?"

ऋषि बोले,—"इसका हाल यों है, सुनो! एक दिन अपनी इस परम रूपवती कन्याको युवावस्थाको प्राप्त होते देख, मैं अपने मनमें विचार करने लगा, कि मैं इसे किस पुरुषको सौंपूँ, जो रूप, वयस और गुणोंमें ठीक इसीके समान हो! इसी समय आमके पेड़पर बैठा हुआ एक तोता बोला,—'मुनिजी महाराज! आप चिन्ता न करें, मैं आज ऋतुध्वज राजाके पुत्र मृगध्वज राजाको अभी इस मन्दिरमें बुलाये लाता हूं। जैसे कल्प-लतिका कल्पवृक्षके ही योग्य होती है, वैसेही यह कन्या भी उन्हींके योग्य है। आप इसमें किसी तरहका सन्देह न कीजिये।' यह कह, यह तोता उड़ गया और उसके बाद तुम्हें यहां लेकर आया। उसीके कहे अनुसार मैंने उचित रीतिके अनुसार अपनी कन्याका विवाह तुम्हारे साथ कर दिया। इसके सिवा मुझे और कुछ भी नहीं मालूम।"

यह सुन राजा बड़ी चिन्तामें पड़ गये। इतनेमें तोता देख कर वह तोता बोल उठा,—'हे राजन्! आप सन्देह न करें, मेरे कहे-सीखे चले जायं, मैं आपका सच्चा शुभचिन्तक हूँ। यद्यपि मैं पक्षी हूँ, तथापि मैं यह जानता हूँ, कि अपने आश्रयमें रहने वाले—अपने भरोसेपर रहनेवाले—मनुष्यकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। क्योंकि यदि कोई नीच पुरुष भी अपनी शरणमें आवे,

तामी यही नहीं त्याग देना चाहिये, फिर आप तो बहुत बड़े आदमी हैं—आपके सम्बन्धमें तो कहनाही क्या है! देखिये, चन्द्रमा अपनी गोदमें आ पड़नेवाले शशक-बालकको त्याग नहीं करता। आप आर्य-पुरुषोंमें श्रेष्ठ हैं, इसलिये मुझ दीन पक्षीको कदापि भूल न जायेंगे। मैं अति क्षुद्र हूं, तोभी मैं आपको सदा याद रखूंगा।"

यह सुन, आश्चर्यमें डूबे हुए राजा, उसकी आज्ञा ले, उसीके लायेही घोड़े पर सवार हुए और उस तोतेके बतलाये हुए रास्ते पर उसके पीछे-पीछे चलने लगे। क्रमशः जब क्षितिप्रतिष्ठित नगर निकट आ गया और दूरसे ही कुछ कुछ दिखाई देने लगा, तब एकाएक वह तोता एक वृक्षपर जाकर चुपचाप बैठ गया। उसे इस तरह चुप्पी साधकर बैठते देख, राजाने अचरजमें पड़कर बड़ी घबराहटके साथ पूछा,—"क्यों भाई! यद्यपि नगरके महलों और किलोंके ऊँचे ऊँचे शिखर दिखाई दे रहे हैं, तथापि अभी हम इससे बहुत दूर हैं। फिर तुम इस तरह बड़े हुए आदमीको [illegible]?"

[illegible]

[illegible]

ओह, उस दुष्ट चन्द्रशेखरकी इतनी मजाल ! उसके दिलमें ज़रा भी भय-शङ्का नहीं हुई ! अपने स्वामीके राज्यको चौपट करा देनेवाली इस स्त्रीकी तृष्णा तो देखो। ओह, कैसा घोर अन्याय है ! पर इसमें बेचारे चन्द्रशेखरका दोष ही क्या है ? सूने राज्य को कौन नहीं अपने हाथमें कर लेना चाहता ? बिना रखवाली खेतको सूअर चरही जाते हैं। असलमें मैं ही अपराधी हूँ, जो दूसरेके बहकावेमें पड़कर बिना सोचे-विचारे राज्यको छोड़कर चला गया। नीति भी तो कहती है, कि बिना विचारे जो करै सो पाछे पछिताय। मैंने उस स्त्रीका जो इतना प्यार किया उसपर इतना विश्वास किया, वह भी अविचारका ही कार्य था फिर मुझे विपत्ति क्यों नहीं झेलनी पड़ेगी ? लोग कहा करते हैं कि मनुष्य यदि कोई काम करे, किसीपर विश्वास करे, किसीको धरोहर सौंपे, किसीको प्यार करे, किसीसे कुछ बोले, किसीको कुछ दे, या किसीसे कुछ ले, तो पहले अच्छी तरह उसके फला-फलका विचार कर ले। नहीं तो पीछे पछतानाही हाथ आता है। कहा भी है, कि

> सगुणमपगुणं वा कुर्वता कार्यजातम् ।
> परिणतिरवधार्या यत्नतः पण्डितेन ।
> अतिरभसकृतानां कर्मणामाविपत्तेः
> भवति हृदयदाही शल्यतुल्यो विपाकः ॥

अ[illegible] नके पहले, बुद्धिमान मनुष्य[illegible] विचार कर लेना

चाहिये, क्योंकि जो बिना सोचे-समझे सहसा कोई काम कर बैठता है, उसका परित्याग [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ही है।"

इस प्रकार अपने राज्यका नाश उपस्थित देख, राजा मन-ही-मन पछताने और हाथ मलने लगे। यह देख, उन लोगोंने कहा,—"राजन्! अब व्यर्थ पछताने और हाथ मलनेसे क्या होगा? मेरी [illegible] हुई [illegible] आपकी कभी बुराई नहीं हो सकती, बुद्धिमान् [illegible] [illegible] हुई [illegible] [illegible] बड़ी [illegible] [illegible] ही है। इसलिये हे महाराज! आप यह न समझें, कि आप का राज्य आपके हाथोंसे चला ही जायेगा। अभी आपको बहुत [illegible] [illegible] [illegible] है।"

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] देता है, [illegible] इन लोगोंकी बात सुनकर राजाको धैर्य हुआ और वे समझ गये, कि उनका राज्य नष्ट न होगा। पर उनका [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] भी नहीं था, कि इसी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हुए [illegible] [illegible]

[illegible]

तरह चुपचाप खड़े रह गये। इसी समय उन्होंने बड़े विस्मयके साथ देखा, कि चारों ओरसे बहुतसे सैनिकोंने उन्हें घेर लिया और "महाराज! आपकी जय हो—ईश्वर आपको दीर्घजीवी बनाये। कहिये, सेवकोंको क्या आज्ञा होती है? आज बड़े भाग्यसे हमने आपके दर्शन पाये हैं। कृपा कर अपने पुत्रके समान हम सैनिकोंको शीघ्र आज्ञा दें, हम आपके लिये प्राण समर्पण करनेको तैयार हैं—"ऐसा कहते हुए उनके चरणोंमें सिर झुका दिया। वे सैनिक शत्रुओंके नहीं, बल्कि राजा मृगध्वजके अपनेही सैनिक थे। इनको किये पलहो साथ हुये और [illegible] पासमें पहुंचकर राजाने उन सैनिकोंसे पूछा,—"तुम लोग यहाँ कैसे चले आये?"

सैनिकोंने कहा,—"हमने दूरसे ही आपको यहाँ आया हुआ देख लिया, पर हम इतना जल्दी यहाँतक कैसे चले आये, यह हमें नहीं मालूम। महाराज! पुण्य योगसेही यह अद्भुत घटना हुई है।"

इस प्रकारकी अद्भुत बात सुनकर राजाको बड़ा विस्मय हुआ। वे अपने मन ही मन विचार करने लगे 'आह, इस [illegible] मनुष्य [illegible]

अब राजाने सब हाल पूछा, तब रानीने उन्हें उस शुककी सारी कहानी कह सुनायी। उसे सुनकर वे बड़े आश्चर्यमें पड़कर कहने लगे,—"राजन्! आप धैर्य रखें, शीघ्रही यह शुक फिर आपसे आ मिलेगा, क्योंकि जो किसीकी भलाई चाहनेवाला होता है, वह उसे कभी भूलता नहीं है। किसी ज्ञानी पुरुषसे पूछनेपर इन सारे भेदोंका भण्डाफोड़ होही जायेगा, क्योंकि ज्ञानियोंसे कुछ छिपा हुआ नहीं रहता। अब इस समय तो आप इन सब चिन्ताओंको चित्तसे दूर कर नगरमें पधारें और उसे अपने चरणोंसे छूकर पवित्र करें। सदा आपके दर्शनोंके लिये उत्सुक रहनेवाले नगर-निवासियोंको दर्शन देकर आनन्दित कीजिये।"

इनकी इस बातको उचित समझ कर राजाने उनकी बात मान ली; क्योंकि उचित बात माननी ही पड़ती है।

इसके बाद नगर-नारियोंके बधाईके शब्दोंसे दसों दिशाओंको गुँजाते हुए राजा मृगध्वज अपने नगरमें आ पहुँचे। उन्हें आते देख, मन्त्रीगण [illegible]

यहाँ चला आया था ; पर आपके अज्ञानी सैनिकोंने मेरा मतलब न समझकर मुझे शत्रु जान, मेरे साथ युद्ध करना आरम्भ कर दिया। इस युद्धमें मुझे बड़ी हानि उठानी पड़ी। कहाँ तो मैं भलाई करने आया और कहाँ बुरा बनकर मार खायी। ऐसे सेवक भला किस कामके, जिनके मन स्वामीके साथ मिले हुए न हों ! नीतियोंमें कहा है, कि "यदि पिताके कार्यमें पुत्र, गुरुके कार्यमें शिष्य, स्वामीके कार्यमें सेवक और पतिके कार्यमें पत्नी अपने प्राण भी दे दे, तोभी उचित ही है।"

भाटके मुँहसे यह बातें सुन, सन्देहके बहुतसे कारण मौजूद रहते हुए भी, राजाने अपनी उदारताके कारण उसकी बातोंको सच ही मान लिया और चन्द्रशेखरके सामने आनेपर उसका उचित आदर किया। यह देख, सब लोग राजाकी बुद्धिमत्ता, उदारता और गम्भीरताकी भूरि-भूरि मुँहसे बड़ाई करने लगे। इसके बाद जैसे लक्ष्मीके साथ पुरुष चलते हैं, वैसेही राजा मृगाङ्कदेव भी अपनी रानी कमलमालाके साथ बड़ी धूमधामसे नगरमें आये। उस समय नगर निवासियोंने जय-जयकार और गम्भीर ध्वनि करते हुए [illegible]

दूसरा परिच्छेद

रण भूमिमें जय प्राप्त करनेमें जैसे राजाही मुख्य हेतु होता है और सैनिक आदि केवल सहायक होते हैं, वैसे ही पुत्र-प्राप्तिमें धर्मही मुख्य कारण होता है और मन्त्र आदि केवल उसके सहायक होते हैं। यही सोचकर राजाने एक दिन पुत्र प्राप्तिके निमित्त शान्तिक आदिके बतलाये हुए मन्त्रका विधि-पूर्वक जाप करना आरम्भ किया। उस मन्त्र-के प्रभावसे राजाकी सातो रानियोंके एक-एक पुत्र हुआ। कहते हैं, कि धर्मसेही कार्यकी उत्पत्ति होती है। इसीसे यद्यपि राजाने अपने उद्देशके कारण [illegible] पुत्रोंका नाम नहीं [illegible] कारण [illegible] [illegible] नहीं [illegible]

एक दिन [illegible] एक बड़ी [illegible] पुत्र [illegible] और [illegible] नदी [illegible] कहा — [illegible] [illegible] [illegible]

रानी कमलमालाने गर्भको धारण किया। क्रमशः वह गर्भ रानीकी सभी इच्छाओंकी तत्काल पूर्ति करनेमें राजाकी तत्परताके कारण, उसी प्रकार बढ़ने लगा, जैसे उत्तम रसके द्वारा सिञ्चन करनेसे कल्पवृक्षका अङ्कुर धीरे-धीरे वृद्धिको प्राप्त होता है। इसी तरह नौ महीने बीत जानेपर दसवें महीनेमें रानीने ठीक उसी तरह एक शुभ लक्षणोंसे युक्त पुत्रको जन्म दिया, जैसे पूर्व-दिशा पूर्णिमाके चन्द्रमाको जन्म देती है। पटरानीके पुत्र हुआ, यह जानकर राजाने अन्य रानियोंके पुत्र-जन्मके समयसे अधिक धूम-धामके साथ उत्सव किये, क्योंकि राजाओंकी यह रीति है, वे पटरानियोंको सब रानियोंसे अधिक मान देते हैं।

पुत्र-जन्मके तीसरे दिन सूर्य-चन्द्र-दर्शनका संस्कार बड़ी धूम-धामके साथ किया गया। छठे दिन षष्ठिजागरण नामक उत्सव हुआ। इन उत्सवोंकी तैयारी देख देख कर राजा फूले अङ्ग नहीं समाते थे। बारहवें दिन राजाने बड़े उत्सव, उत्साह और हुलासके साथ पुत्रका नामकरण किया और स्वप्नके अनुसार ही उसका नाम शुकराज रखा।

क्रमशः वह बालक बढ़ने लगा [illegible] देखते देखते पाँच वर्षका [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] बालका पेड़ फल देने [illegible] [illegible] [illegible] सबका सुखी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] वृद्ध जयन्तको [illegible] [illegible] [illegible] उसमें एक-एक [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] चतुरता

और [illegible] [illegible] और जिस [illegible]

एक दिन [illegible] अपनी प्यारी [illegible]

[illegible]

अनेक प्रकारके उपचार करनेके बाद राजकुमारको थोड़ा-बहुत होश हुआ और उसने आँखें खोल दीं, पर सूखे [illegible] चेहरेपर पहलेकी सी प्रसन्नता नहीं दिखाई दी। उसने चौंककर चारों ओर देखना तो शुरू कर दिया, पर लाख चेष्टा करनेपर भी उसके मुँहसे बोली नहीं निकली। जैसे छद्मस्थ अवस्थामें तीर्थङ्कर मौन रहते हैं, वैसेही कुमार भी मौन [illegible]र यह देख, राज-दम्पती को बड़ी घबराहट हुई। उन्होंने सोचा,—"दैवयोगसे पुत्रकी मूर्च्छा तो टूट गयी, पर इसका मुँह क्यों बन्द है? बोली क्यों नहीं निकलती? यह अवश्यही हमलोगोंका बड़ा भारी दुर्भाग्य है।" यही सोचते हुए वे लोग उस लड़केको लिये हुए नगरमें चले आये।

इसके बाद राजाने पुत्रका कण्ठ खुलवानेकी बड़ी-बड़ी तरकीबें कीं, पर वे सब ठीक उसी तरह बेकार गयीं, जैसे दुर्जनपर किया हुआ उपकार कभी सफल नहीं होता। इसी तरह एक-दो दिन नहीं, छः महीनेका समय निकल गया। इस अर्सेके बीचमें न तो यही मालूम हुआ, कि इसे एकाएक क्या हो गया है और न यह एक शब्द बोला ही। राजकुमारकी इस कठिन बीमारीका कोई कारण नहीं मालूम पड़ा। सब लोग यही कहने लगे, कि विधाताके करतब भी कुछ अजीब ढंगके होते हैं—वह प्रत्येक रत्नमें कोई न कोई दूषण लगा देता है। उसने अंत चन्द्रमामें कलङ्क लगाया, सूर्यमें बहुत गरमी पैदा कर दी, आकाशको शून्य बनाया, पवनको चञ्चल कर दिया, मणिको पत्थरोंका

गिनतीमें रखा, कल्पवृक्षको जड़ बनाया, पृथ्वीमें धूल भर दी, समुद्रको खारी बनाया, बादलोंका रङ्ग काला कर दिया, अग्निको सब कुछ जलानेवाला बनाया, पानीको हरदम नीचेकी ही ओर जानेवाली चीज़ बनाया, मेरुको कठोर कर दिया, सुगन्धित कपूरको तुरत उड़ जानेवाला बनाया, कस्तूरी काली-कलूटी बनायी, विद्वान्‌को निर्धन बनाया, धनवानोंको मूर्ख कर रखा और राजाओंको लोभी बना दिया, उसी तरह उसने हमारे राजाको ऐसा सुन्दर पुत्र देकर भी इसे गूँगा कर दिया। इसे विधाताकी विचित्र विधि नहीं, तो और क्या कहें? इसी तरहकी बातें कह-कहकर लोग तरस खाने और राजाके साथ सहानुभूति दिखलाने लगे। सच है, बड़े आदमियोंका दुःख देखकर सबकी छाती फटने लगती है!

उठे और बोले,—"अहा! यह मुनिकी कैसी अपूर्व महिमा है, कि यह बालक, जो एक मुद्दतसे गूँगा हो रहा था, बिना किसी मन्त्र-तन्त्र या टोने-टटकेके, एकाएक बोल उठा।"

सबके चुप हो जानेपर राजाने पूछा,—"मुनिवर! यह आश्चर्य-लीला कैसी है, कृपा कर मुझे समझाकर मेरा सन्देह दूर कीजिये।"

यह सुन, केवलज्ञानी मुनिने कहा,—"हे राजन्! अब मैं तुम्हें कुछ पूर्व-भवकी बातें बतलाता हूँ। उन्हें ध्यान देकर सुनो—

"किसी ज़मानेमें मलयदेशमें भद्दिलपुर नामका एक नगर था। उस नगरमें बड़ेही विचित्र चारित्रवाले जितारि नामके राजा रहते थे। इन्होंने जिस प्रकार एक ओर अपने द्वारपर आनेवाले सभी याचकोंको मुँहमाँगा दान देकर निहाल कर दिया था, वैसेही दूसरी ओर अपने सम्मुख आनेवाले सभी शत्रुओंको परास्तकर उन्हें क़ैद कर लिया था। चतुरता, उदारता और शूरता आदि गुणोंसे सुशोभित वे राजा एक दिन अपने दरबारमें बैठे हुए थे। इसी समय द्वारपालने आकर कहा,—"महाराज! विजयदेव राजाका परिचित हृदयवाला दूत आया है और महाराजके दर्शन करना चाहता है। यदि आपकी आज्ञा हो, तो मैं उसे यहाँ ले आऊं।" राजाने झट-पट आज्ञा दे दी। थोड़ी देरमें वह दूत दरबारमें आ पहुँचा। राजाने उससे वहाँ आनेका कारण पूछा। तब उस सन्मतिने और मुस्कुराते हुए हाथ जोड़कर कहा,—"महाराज! साक्षात्

तरह समय बीतता चला गया—इसी जवानीकी सबसे ऊँची सीढ़ीपर पहुँच गये। इधर क्रमसे मालती भी युवती हो चली। तब दोनों बहनोंने एक दिन आपसमें यह प्रतिज्ञा कर डाली, कि हम दोनों एकही पुरुषके साथ विवाह करें, जिसमें हमारा कभी वियोग नहीं हो। जब उन दोनोंकी इस प्रतिज्ञाकी बात राजाने सुनी, तब उन्होंने उन दोनोंके लिये स्वयंवर रचाया। स्वयंवरका मण्डप तैयार हो गया है। उसमें बड़े ही सुन्दर-सुन्दर मञ्च राजा राजकुमारोंके बैठनेके लिये तैयार किये गये हैं। अस्त्र-शस्त्र और आभरणोंके इतने ढेर राजाने इकट्ठे कर रखे हैं, कि वे छोटे-मोटे पहाड़के समान दिखाई दे रहे हैं। अङ्ग, बङ्ग, कलिङ्ग, आन्ध्र, जालन्धर, मरुस्थल, लाट, भोट, मेदपाट, विदर्भ, विराट, गौड़, चोड़, महाराष्ट्र, सौराष्ट्र, कुरु, गुर्जर, आभीर, कीर, काश्मीर, गोल, [illegible] [illegible] [illegible], सपादलक्ष, [illegible], [illegible], [illegible] [illegible] कान्यकुब्ज, [illegible], मगध, [illegible] सिन्धु, [illegible] [illegible] [illegible] आदि देशोंके राजाओं और राजकुमारोंको [illegible] दिया गया है [illegible], हे मगध-नरेश! [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] राजकुमारोंके [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible]

न्यौछावर हो गये। ये दोनों राजकुमारियाँ आकर खड़ी ही हु
थीं, कि उनकी सखियाँ एक-एक करके सब राजाओंका परिच
देने लगीं। उन्होंने कहा,—"बहनो! यह देखो, यह सब राज
मालिक राजा राजगृहके नरेश हैं। यह शत्रुओंके कुल-गौरव
का ध्वंस करनेवाले परम नीति-कुशल कौशल-देशके राजा हैं
अपनी शोभासे सारे स्वयंवर मण्डपकी शोभा बढ़ानेवाले य
गुर्जर-देशाधिपतिके चिरंजीव कुमार हैं। [illegible]
लज्जित करनेवाले यह सिन्धु-नरेशके पुत्र हैं। शास्त्र और उ
कला-कलियों [illegible] रंग भूमिके समान य
अङ्ग देशके भूपति हैं। [illegible] आलिङ्गन करनेवा
यह कलिङ्गदेशके राजा हैं। अपने रूपसे सामने कामदेवको भी लज्जि
करनेवाले यह बङ्गदेशके राजा हैं। [illegible]
मालवाके मशहूर महाराज हैं। प्रजाका पालन करनेवाले मैं
परम दयालु यह नेपालके भूपाल हैं। भारतवर्ष भरमें सबसे गुणों
भरे हुए यह कुरु देशके राजा हैं। शत्रुओंकी स्त्रियोंको वैधव्य
दान करनेवाले यह सिन्ध देशके राजा हैं। वसन्तकी सुगन्धि
कल्पवृक्षके समान यह मगध देशके राजा हैं।"

इस प्रकार [illegible] राजाओंका परिच
[illegible]

द्वाह करने लगीं। शास्त्रकारोंने सच कहा है, कि एक ही चीज़के दो चाहनेवालोंमें प्रेम नहीं रह सकता।

"हंसी स्वभावसे ही बड़ी सरल थी, परन्तु सारसीकी प्रकृति बड़ी मायाविनी थी। वह कभी-कभी बड़े नख़रे दिखलाती और राजाका मन मोह लेती थी। परन्तु इस प्रकार कपट करनेके कारण उसने कुछ स्त्री-कर्म उपार्जन किया। हंसी राजाको कम प्यारी थी, परन्तु अपने सरल स्वभावके कारण उसने स्त्री-वेदना-कर्म-दलको शिथिल कर दिया। प्राणियोंकी यह कितनी बड़ी मूर्खता है, कि वे स्वयं ही माया और कपट का जाल फैलाते तथा अपनी आत्माको दूसरे जन्ममें नीचे जानेको मजबूर करते हैं।

"एक दिन राजा अपनी दोनों स्त्रियोंके साथ खिड़कीपर बैठे हुए थे। इसी समय उन्होंने सामनेसे जाते हुए कुछ निर्दय मनुष्योंका एक झुंड देखा। यह देख, राजाने अपने नौकरोंसे पूछा, कि ये लोग कौन हैं? यह सुन, सेवकोंने कहा, कि महाराज! शंखपुर नामक नगरसे आया हुआ शोलीय है और सिद्धाचल नामक महातीर्थकी यात्रा करने जा रहा है। यह सुन [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] दिया

*धर्मसे सभी इष्ट वस्तुएं प्राप्त होती हैं—सभी साधनाओं-की सिद्धि होती है, इसलिये इस जगत्‌में धर्म ही एक सार-भूत है। इसी तरह जगत्‌में जितने धर्म हैं, सबमें अर्हन्तका धर्म (जैनधर्म) मुख्य है और इसमें भी सम्यक्‌दर्शन श्रेष्ठ है, क्योंकि जबतक सम्यक्‌दर्शन नहीं प्राप्त होता, तबतक सभी यम-नियम व्यर्थ ही हो जाते हैं। यह सम्यक्‌दर्शन देव, गुरु और धर्म—इन तीन रत्नोंकी उपासनासे प्राप्त होता है। इनमें भी [illegible] मुख्य है। [illegible] प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभ-देव-भगवान् [illegible] हैं, इसलिये [illegible] इसकी महिमा [illegible] जाती है। यह सब तीर्थोंमें श्रेष्ठ माना जाता है। भिन्न-भिन्न गुणों और महिमाओंके कारण इस तीर्थके भिन्न-भिन्न नाम हैं। सिद्धक्षेत्र, तीर्थराज, मरुदेव, भगीरथ, विमलाचल, बाहुबली, सह-स्रकमल, [illegible] कदम्ब, शतपत्र, नगाधिराज, अष्टोत्तर, [illegible] [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] [illegible], [illegible], [illegible] और [illegible] आदि [illegible] [illegible] नाम [illegible] [illegible] जाते हैं। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] हुए हैं। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हुए हैं और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हुए हैं। [illegible]

तीर्थंङ्करोंका इस तीर्थमें आगमन हो चुका है और अभी नेमिनाथ भगवान्‌के अतिरिक्त शेष उन्नीस तीर्थङ्करोंका यहाँ आगमन होनेवाला है। अनन्त जीव उस तीर्थमें सिद्धि-पदको प्राप्त कर चुके हैं और अभी अनन्त जीव भविष्यत्‌में यहाँ सिद्धि-पद प्राप्त करेंगे। इसी लिये इस तीर्थको सिद्धक्षेत्र कहा जाता है। महाविदेहमें विचरण करनेवाले, विश्व-वन्दनीय तीर्थङ्करोंने भी इस तीर्थकी प्रतिष्ठा की है। बड़े बड़े भव्य प्राणी निरन्तर इसके नामकी माला जपते हैं। जैसे अच्छी तरह जोते हुए खेतमें बोया हुआ बीज अन्न उपजाता है, वैसे ही इस तीर्थमें यात्रा, स्नात्र, पूजन, तप और दान आदि सत्कर्म करनेसे बहुत ही अच्छा फल प्राप्त होता है। कहते हैं, कि इस तरहका ध्यान करनेसे हजार पल्योपमका,* इस तीर्थमें जानेका निर्णय करनेसे लाख पल्योपमका और तीर्थकी राहमें आजानेसे एक सागरोपमका† पातक नष्ट हो जाता है। शत्रुञ्जय-पर्वत के ऊपर जाकर श्रीजिनेश्वर भगवान्‌का दर्शन करनेसे नरक और तिर्यञ्च—इन दोनों गतियोंको प्राप्त होनेका भय दूर हो जाता है। यहाँ पूजा और स्नात्र विधान करनेसे हजारों सागरोपमके उपार्जित दुष्कर्म नष्ट हो जाते हैं। इस पुण्डरीक पर्वतका ओर एक एक पग चलनेसे मनुष्यके करोड़ों जन्मोंके पाप कट जाते हैं। शुद्ध बुद्धिमान मनुष्य

* असंख्य वर्षोंका एक पल्योपम होता है।

† दस कोटाकोटी पल्योपमका एक "सागरोपम" होता है।

पाँच उपवासका फल पावे, "आंबिल"* करे, तो पन्द्रह उपवास का फल पावे, और उपवास करे, तो मास-क्षमणका† फल पावे। शत्रुंजय—तीर्थ में पूजा और स्नात्र करनेसे जितना फल मिलता है, उतना दूसरे तीर्थों में सुवर्ण, भूमि तथा भूषणोंका दान करनेसे भी नहीं मिल सकता। इस पर्वत पर धूप जलानेसे पन्द्रह उपवासका फल प्राप्त होता है, कपूर आदि सुगन्धित पदार्थों का धूप-दीप करनेसे मास-क्षमणका फल प्राप्त होता है और साधुओंका सत्कार करनेसे भी ऐसे ऐसे कितने ही मास-क्षमणोंका फल प्राप्त होता है। जैसे बहुतसे जलाशय होते हुए भी समुद्र को ही नीरनिधि कहते हैं, वैसे ही सब तीर्थों में यह महातीर्थ है। जिन प्राणीने इस तीर्थकी यात्रा करके अपने अर्थको सार्थक नहीं किया, उसका जीवन, जन्म, द्रव्य और कुटुम्ब—सब कुछ बेकार ही समझना चाहिये। जिसने इस तीर्थकी वन्दना नहीं की, उसका इस संसार में आना और न आना एक सा हुआ। उसका जीना मरना बराबर है। यह पवित्र हो, तीर्थ सूर्य के समान है। यदि स्त्री, बालक, गाय और अन्यान्य कठिन हिंसाएं दुष्कर हैं, तो वे छूट जाते हैं, इस तीर्थकी वन्दना करने न करें? इसी का उपदेश प्राणियों को सुनाते रहना चाहिये। जिससे वह सब-प्राणी की ...

* [illegible]

† [illegible]

तक अन्न-जल भी न ग्रहण करूँ, ऐसा सङ्कल्प ले कर बैठे। इसी
और सारसीने जब यह हाल सुना, तब उन्होंने भी इसी तरहका
उत्साह और आग्रह प्रकट किया। देखादेखी अनेक पुरजनोंको
उस तीर्थकी यात्रा करनेका उत्साह हो आया और सब लोगोंने
वहाँ जानेका पूरा सङ्कल्प कर लिया। कहा है, कि यथा राजा
तथा प्रजा।

परन्तु राजा या अन्य लोगोंने बिना कुछ सोचे-विचारे ऐसा
सङ्कल्प कर लिया। अब इनका क्या हाल होगा! इन्होंने यह
भी नहीं सोचा, कि हमें जहाँ जाना है, वह स्थान यहाँसे कितनी
दूर है और ऐसा कठिन प्रण करके हम वहाँतक कैसे पहुँच सकते
हैं! यह तो बड़े भारी साहसकी बात है। यह तो प्रण नहीं-
प्राण देनेका उपाय है। यही सब सोच-विचार कर, मन्त्री लोग
राजाको बार-बार समझाने लगे, कि महाराज! ऐसी अनहोनी
बातका मनसूबा छोड़ दीजिये। गुरु महाराजने भी कहा, कि
महाराज! ऐसा दुस्साहस न करें। बहुत सोच-विचार कर
प्रतिज्ञा करें; क्योंकि बिना विचारे काम करनेसे उसका फल
उलटा होता है,—फिर जन्मभरके लिये पछतावाही हाथ रहता है।

यह सुन राजाने बड़े उत्साहके साथ कहा,—"स्वामिन्!
अब तो मैं अभिग्रह (सङ्कल्प) धारण कर चुका। अब तो
सोचना-विचारना व्यर्थ है। किसीके हाथका पानी पी लेनेके
बाद उसकी जात पाँत किस लिये पूछना? हजामत बनवा लेने
के बाद दिन वार और तिथि नक्षत्रकी बात पूछनेसे क्या लाभ

महाराज ! [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]
[illegible]

चौथा परिच्छेद

रा जा इस प्रकार फुर्तीके साथ तीर्थ-यात्राके लिये रवाना हो गये, मानों वे कर्म-रूपी शत्रुओंपर चढ़ाई करने जा रहे हों। जाते-जाते कुछ दिनों बाद वे काश्मीर-देशके एक जङ्गलमें आ पहुँचे। उस समय भूख-प्यास और पैदल यात्रा करनेके कारण राह चलनेकी थकावटसे राजा और रानीके सूखे हुए चेहरेको देख, चिन्तासे व्याकुल होकर, सिंह नामक मंत्रीने गुरु महाराजके पास आकर कहा,—"महाराज! आप किसी तरह महाराजको समझाइये, नहीं तो धर्मके स्थानमें जैन-शासनकी अवहेलना ही होगी। उसी समय सूरीश्वरने राजाके पास आकर कहा,—"राजन्! तुम लाभालाभका विचार क्यों नहीं करते? कहते हैं, कि—

सहसाविहित कार्यं न प्रायेण प्रमादवत्।
आगाराः सहसाकाराश्च. सवत्र हि स्मृता. ॥'

अर्थात्—प्रायः सहसा किया हुआ काम सिद्ध नहीं होते; क्योंकि सहसाकार च आगार ... हैं, इस-लिये तुम ऐसा ... करो, ... सुन ...।

शरीरसे थके हुए, पर मनसे दृढ़चित्तवाले राजाने कहा,— "महाराज! आप यह उपदेश किसी कमज़ोर आदमीको देते, तो अच्छा था। मैं तो अपनी की हुई प्रतिज्ञाको पूर्ण करनेकी सामर्थ्य रखता हूँ। प्राण भलेही चले जायें, पर मेरी प्रतिज्ञा नहीं भङ्ग हो सकती।"

राजाके इन ओजस्वी वचनोंको सुनकर उनकी हंसी और कातरता गायब होगयी [illegible] पहुँची और बड़ा ज़ोर दिखलाती हुई अपने बच्चोंकी प्रतिज्ञाके पालनमें अपना प्राण दे देनेकी भी दृढ़ता दिखलाने लगी। प्रतिज्ञा-पालनके सम्बन्धमें इतना बड़ा उत्साह देखकर सब लोग उनके धर्म-प्रेम, एक-निष्ठता, [illegible] और अपूर्व-दृढ़ताकी सौ-सौ मुंहसे प्रशंसा करने लगे। किसीने कहा, यह नहीं कह सकता हूँ, कि क्या! यह तो सारा कुटुम्बही धर्मका ऐसी हिमायती है रहा है—इस विश्व-को धर्मनिष्ठता तो जरा देखो! देखते-ही-देखते सभी बरबस आंसू बहाने और राजाकी बड़ाई करने लगे।

इसके बाद [illegible]

एक पहर बीतते-न-बीतते तुम लोग उस तीर्थके दर्शन कर सकोगे वहाँ पहुँच, श्रीजिनेश्वर भगवान्‌की वन्दना कर, तुम लोग अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर सकोगे।" यह सुन मन्त्रीने कहा,—"देव! आप सबको ऐसा ही सपना दिखायें, जिसमें सब लोग इस बातको मानलें।"

हुआ भी ऐसा ही। यक्षने सबको इसी तरहका स्वप्न दिखाया। इसके बाद उसने उसी जंगलमें एक पर्वतके ऊपर विमलाचल-तीर्थके समान एक नया तीर्थ बना डाला। देवता क्या नहीं कर सकते? देवता जो कुछ वैक्रिय कार्य करते हैं, वह अधिकसे अधिक पन्द्रह दिनोंतक रहता है, पर उनका बनाया हुआ काम बहुत दिनोंतक रह जाता है। जैसे इन्द्रकी बनायी हुई नेमिनाथ भगवान्‌की मूर्ति रैवताचल पर्वतके ऊपर बहुत दिनोंतक ज्योंकी त्यों रह गयी थी।

सवेरे ही उठकर सब लोग एक दूसरेसे रातके स्वप्नका हाल सुनाने लगे। इसी तरहकी बातें करते हुए वे लोग आगे बढ़े। इसके बाद ही देवताके बतलाये अनुसार तीर्थके दर्शन कर उन लोगोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। वहाँ जिनेश्वर महाराजकी वन्दना और पूजाकर सब लोगोंने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। सबके शरीरमें आनन्दके मारे पुलकावली छा गयी और पुण्यके अमृतसे सबकी आत्मा परिपूर्ण हो गयी। स्नान-पान-पारण मार्लोद्घाटन आदि क्रियाएं करनेके बाद वे लोग वहाँसे पीछे लौटनेको तयार हुए। राजा भी वहाँ उसके गुणोंके कारण मुग्ध हुएके

स्नान उसी संघके साथ साथ चल पड़े। परन्तु फिर थोड़े ही दिनमें तीर्थकी वन्दना करनेके लिये वहीं लौट आये। कहनेका मतलब यह, कि वहां से लौट आनेपर भी उनका मन नहीं माना और वे फिर वहीं चले आये। इसी तरह अपनी आत्माको सात प्रकारको नरक-गतिसे बचानेके लिये राजा सात बार वहां फिर-फिर चर आये।

यह देख मन्त्रीने पूछा,—"महाराज! यह क्या मामला है?" राजाने कहा,—"जैसे बालक अपनी मांको छोड़कर कहीं जाना नहीं चाहता, वैसेही मुझसे भी यह तीर्थ छोड़ते नहीं बनता। इसलिये मन्त्री! मेरी तो इच्छा है, कि तुम मेरे लिये यहीं हो एक नगर बसाओ। मैं तो अब यहीं रहूँगा; क्योंकि जैसे हाथमें आया हुआ खज़ाना कोई हाथसे निकलने देना नहीं चाहता, वैसे ही मैं भी इस प्रिय स्थानको छोड़ना नहीं चाहता।"

राजाकी यह आज्ञा पाकर, मन्त्रीने तुरतही उस स्थानपर एक नगर निर्माण करना आरम्भ किया; क्योंकि बुद्धिमान् मनुष्य ...से स्वामीकी उचित आज्ञाका पालन करनेमें कभी विलम्ब नहीं ...रते। राजाने उस नगरमें जाकर बसनेवालोंका कर सदाके ...से माफ़ कर दिया। इस लोभसे और तीर्थमें रहनेके स्वार्थ ...रित होकर उस देशके बहुतसे मनुष्य भी वहां बस गये ... नगरमें रहनेवाले मनुष्योंके अचार विचार ... इस लिये ... नाम विमलपुर रख गया। कहा है कि आजतक शायद ... जिस नामसे वैसाही गुण भी हो वही ठीक नाम है

नगर बस जानेपर श्रीजिनेश्वरके ध्यानमें मन लगाये हुए राजा जितारि वहींपर बड़े आनन्दसे समय व्यतीत करने लगे। कुछ दिन इसी प्रकार बड़े सुखसे बीत गये।

उस नगरमें जो जिन-मन्दिर था, उसके सुनहले कलशपर प्रतिदिन एक मीठी बोली बोलनेवाला तोता आकर बैठा करता था। धीरे-धीरे राजाके मनको उसने आकर्षित कर लिया—राजा उसे देखकर बड़ी प्रसन्नता अनुभव करने लगे। उस प्रासाद-पर आकर बैठनेवाले तोतेपर राजाका मन ऐसा मोहित हो गया, कि वे अर्हत्का ध्यान भूलने लगे।

इसी तरह बहुत दिनोंके बाद राजाने अपना अन्तसमय आया देखकर श्रीऋषभदेव स्वामीके पास आकर अनशन करना आरम्भ किया, क्योंकि धर्मात्माओंकी यही रीति है। उनकी दोनों धर्म-नारियोंने भी अन्तसमयमें राजाकी भक्तिको धर्ममें स्थिर रखनेके लिये नियांमणा* और नमस्कार मन्त्रका जाप करना आरम्भ किया। सच कहा है, कि बुद्धिमान् मनुष्य समयानुसार बर्ताव करनेवाले होते हैं। इसी समय उस मन्दिरपर वही तोता आ बैठा और बड़े मीठे स्वरसे बोलने लगा। दैवयोगसे राजाका ध्यान उसकी ओर चला गया। ज्यों ही उनका ध्यान उस तोतेकी तरफ गया, त्यों ही उनकी देह छूट गयी और इसी लिये उनकी आत्मा शुक-योनिमें उत्पन्न हुई। सच है, कोई अपना उपार्जन नहीं छोड़ सकता,

* [illegible]

श्रीजिनेश्वर भगवान्‌के सम्यक्त्वका बहुत बड़ा माहात्म्य है।

इसके बाद राजाकी प्रेतक्रिया समाप्त कर हंसी और सारसीने प्रव्रज्या अङ्गीकार कर ली और अन्तकालमें मृत्युके बाद प्रथम देवलोकमें आकर देवियाँ हुईं। उन्होंने अवधिज्ञानके द्वारा यह मालूम करलिया, कि उनके स्वामीका जीव इस समय कहाँ है। जब उन्हें यह मालूम हुआ, कि वे तो शुक-योनिमें हैं, तब उन्हें बड़ा दुःख हुआ। वे झटपट अपने स्वामीके पास आ पहुँची और उनसे पूर्वजन्मका हाल बतलाते हुए उन्हें प्रतिबोध देकर उसी तीर्थमें उनसे अनशन कराया। इस बार वे मरकर उन्हीं दोनों देवियोंके स्वामी देव हुए। कालक्रमसे समय पूरा होनेपर पहले वे दोनों देवियाँ ही देवलोकसे च्युत हुईं। उस समय उस देवने केवली महाराजसे पूछा,—“भगवन्! मैं सुलभ-बोधि हूँ या दुर्लभबोधि?” मुनिने कहा,—“तुम सुलभबोधि हो।” यह सुन, देवने कहा,—“स्वामिन्! यह क्योंकर हो सकता है? कृपाकर बतलाइये।” यह सुन, केवली महाराजने कहा,—

“तुम्हारी दोनों देवियोंमेंसे जो पहले च्युत हुई है, हंसी नामक रानीका जीव क्षितिप्रतिष्ठित नगरके राजा ऋतुध्वजका [illegible] मृग-ध्वज नामक राजा हुआ है और सारसीका जीव पूर्वमें किये हुए कपटके कारण काशमीर देशके भद्रिल विमलाचलके निकटवाले आश्रममें गाङ्गिलमुनिकी पुत्री कमलमालाके रूपमें अवतीर्ण हुआ है। इन्हीं दोनोंके संयोगसे तुम उनके घर पुत्रके रूपमें जन्म ग्रहण करोगे और तुम्हारा अभिधान शुक रहेगा।”

इतनी कथा सुनाकर श्रीदत्तकेवलीने राजा मृगध्वजसे कहा, "हे राजन्! उसी जितारि राजाके जीवने, तोतेका रूप बनाकर उस दिन तुम्हें उस आमके पेड़पर दर्शन दिया था। वही उस दिन मीठी बोली बोलकर तुम्हें उस आश्रममें ले गया, उसीने विवाहके बाद कन्याके लिये विविध प्रकारके अच्छे-अच्छे वस्त्र और आभूषण दिये, तुम्हें रास्ता दिखलाते हुए पीछे लौटा लाया और तुम्हारे सैनिकोंसे तुम्हारा मिलाप करा दिया। इसके बाद वह देवलोकमें चला गया। आयु पूर्ण होनेपर देवलोकसे च्युत हो, यही तुम्हारा शुक नामका यह पुत्र हुआ है। तुम इसे उसी आम्रवृक्षके नीचे ले आये, इसीसे इसे जातिस्मरण हो आया और यह सोचने लगा, कि यह तो बड़ी विचित्र लीला हुई। पूर्वजन्ममें जो दोनों मेरी स्त्रियाँ थीं, वेही इस समय मेरे माता-पिता हैं। इन्हें माता-पिता कहकर पुकारनेकी अपेक्षा तो मौन रहनाही अच्छा है। यही सोचकर यह बालक मौन हो रहा है। यह कोई रोगी नहीं था, बल्कि इसने जानबूझकर मौन अवलम्बन कर लिया था, इसीसे तुम्हारा कोई उपाय काम न आया और यह गूंगा बना रहा। अतएव मेरी आज्ञा टालना अनुचित समझकर ही इसने मुंह खोला है। गुरुराज कहते हैं, मानो पूर्व-भवके अभ्यासके कारण इसके सम्यक्त्व आदि संस्कार निश्चल हैं कहा भी है—कि पुण्य और अपुण्य संस्कार निश्चल पूर्व भवके अभ्यास द्वारा स्थिर हैं।"

मुनि इतना कहकर रहे थे, कि गुणसुन्दर ... राजन्, सम्मुख आपने जो कुछ कहा है, वह सोलहो आने ठीक है।"

पुनः केवलज्ञानी महाराजने कहा,—"भाई शुक ! इसमें आश्चर्य की तो कोई बात नहीं है । यह सब एक पूरा नाटक है, जिसमें प्रत्येक जीव भवान्तरमें अनेक रूपमें एक दूसरेके साथ भाग्य और तरह-तरहके सम्बन्ध भोग चुका है । कहा भी है, कि—

'यः पिता स भवेत् पुत्रो यः पुत्रः स भवेत्पिता ।
या कान्ता सा भवेन्माता या माता सा भवेत्प्रिया ॥'

अर्थात्—जो पिता है, वही पुत्र हो जाता है और जो पुत्र होता है, वही पिता हो जाता है । जो स्त्री होती है, वही माता हो जाती है और जो माता होती है, वही स्त्री हो जाती है । मतलब यह, कि भिन्न-भिन्न समय मनुष्य का दूसरोंके साथ भिन्न-भिन्न प्रकारका सम्बन्ध होता है

'नसा जाइ नसा जोणी न तं ठाणं न तं कुलं
न जाया न मुआ जत्थ, सव्वे जीवा अणंतसो ।'

अर्थात् ऐसी कोई जाति नहीं, ऐसी कोई योनि नहीं, ऐसा कोई स्थान नहीं, ऐसा कोई कुल नहीं जिसमें अनन्त [illegible] अनन्त बार [illegible] न हुए हों । अर्थात् [illegible] अर्थात् [illegible]

[illegible]

[illegible]

इसलिये नगर सूना था। देवांगनाके राजा भी वहीं आ पहुँचे। योगिनियोंको देखते ही राजाका मन हाथसे निकल गया और वे योगिनियोंके प्रभावकी वजहसे अपने आपको भी भूल गये। कहा भी है, कि—

[illegible]
[illegible]

अर्थात्—यौवन, धन-सम्पत्ति, प्रभुता और अविवेक इनमें से यदि कोई एक भी [illegible] हो, तो वह अनर्थ का कारण है, फिर जहाँ ये चारों हों, वहाँ क्या कौनसी आफ़त न होगी।

राजा, जिसे प्रजाकी रक्षा करनी चाहिये, वह इसी भाँति यदि प्रजापर कभी-कभी बड़ा अत्याचार करता है, तो [illegible] है—[illegible] और [illegible] करता है, [illegible] है। [illegible] है। [illegible]

[illegible]

करवायी; पर राजाने एक न सुनी—उलटे दीवानकोही खूब गाली-गलौज देकर अपने यहाँसे खदेड़ दिया। ओह! धिक्कार है, इस चित्तकी वृत्तिको, जो अन्याय करते हुए भी किसीकी भली सीख सुनना नहीं चाहती।

दीवानने सेठके पास आकर कहा,—"सेठजी! अब तो कोई उपाय नहीं नज़र आता। हाथीका काल सूना और राजाको मनमानी करनेसे रोकना, दोनों ही काम कठिन हैं। जो रक्षक हो, वही यदि भक्षक बन जाये; जो रखवाली करनेके लिये रखा गया हो, वही यदि चोर हो जाये; तो फिर लाख होशियार होते हुए भी आदमी उससे कैसे अपना बचाव कर सकता है। कहा भी है, कि—

'माता यदि विषं दद्यात् विक्रीणीत पिता सुतम्।
राजा हरति सर्वस्वं का तत्र परिदेवना?'

अर्थात्—यदि माता ही पुत्रको विष दे दे और पिता उसे बेच डाले [illegible] ले, तो फिर [illegible]

दीवानकी इन बातोंको सुनकर सेठको बड़ा दुःख हुआ

उसने बड़े ही दुःखित चित्तसे अपने पुत्रको बुलाकर कहा,—"बेटा! अब तो मैं यहाँ नहीं रह सकता। कारण, दुर्मांलव मेरा ऐसा अपमान हुआ, जिसे मनुष्य तो क्या पशु पक्षी भी नहीं सह सकते। स्त्रीका अपमान बड़ाही दुःखदायी होता है। अब तो इस अपमानका बदला लेना ही मेरे जीवनका व्रत हो गया। मुझे तो अब यही एक उपाय दिखलाई देता है, कि मैं यहाँसे थोड़ीसी सेना लेकर किसी दूसरे राजाके पास चला जाऊँ और उस को खातिर कर, उसे अपनी ओर मिलाकर, उसीसे इनको पूरी-पूरी सजा दिलवाऊँ। राजाके साथ बिगाड़, राजाओंका ही काम है।"

अपने पुत्रसे ऐसा कह, अपनी प्रजामेंसे थोड़े लोग साथ लेकर वह सेठ किसी दूसरे देशमें चला गया। सच है, अपनी प्यारी स्त्रीके लिये क्या-क्या नहीं करते? कहा भी है, कि—

दुःखान्यपि मुखेन स्त्रियाः प्राणप्रियायाः
किं नाम न कुर्वन्ति पुरुषा स्त्रीकृते नराः।

[illegible]

जब इन दोनोंमें खूब तू तू मैं-मैं होने लगी और मार-पीट की नौबत आ पहुंची, तब जहाज़ के खलासियों ने बीच-बचाव करते हुए कहा,—"देखो, इस तरह जहाज़ पर हल्ला-गुल्ला न करो। दो दिन बाद यह जहाज़ सुवर्णकूल नामक बन्दरगाह पर पहुंच जायेगा। वहीं उतर कर पाँच पञ्चोंको इकट्ठा करके तुम लोग अपने झगड़े का निपटारा करा लेना।" उनकी बात सुन, शंखदत्त चुप हो गया। उधर धनदत्तने अपने मनमें सोचा,—"इस कन्या को तो शंखदत्तने ही जिलाया है, इसलिये पंच तो यही फ़ैसला करेंगे, कि यह कन्या शंखदत्त को ही मिलनी चाहिये। इस लिये सुवर्णकूल पहुंचने के पहले ही कोई कपट-रचना करनी चाहिये।"

मन-ही-मन ऐसा विचार कर, धनदत्तने शंखदत्तसे खूब प्रेम भरी बातें करना आरम्भ कर और उसके मनमें इस बातका पूरा-पूरा विश्वास उत्पन्न कर दिया, कि अब उसके मनमें ज़रा भी डाह या क्रोध नहीं है। क्रमशः दिन बीता- रात हुई। इस समय जहाज़ के एक बाजू की खिड़की के पास बैठे हुए धनदत्तने पुकारा "अरे भाई शंखदत्त कहाँ हो? ज़रा इधर तो आओ— यह देखो एक बड़ा भारी अचम्भा नज़र आ रहा है। [illegible]"

इस आवाज़ को सुनते ही [illegible] शंखदत्त दौड़ा हुआ [illegible] [illegible] [illegible] समुद्र में [illegible]

कहा,—"यह सुवर्ण रेखा नामकी प्रसिद्ध वेश्या है। यह राजा की रखेली है। पचास हजार रुपये लिये बिना यह दूसरे से कभी बात भी नहीं करती।"

यह सुनते ही उसने पचास हजार रुपये देकर उससे बातें करने का निश्चय किया और एक दिन उसे और उस [illegible] अभया का साथ लेकर जंगल में घूमने चला गया। वहाँ जाने के पेड़ नीचे अपनी दोनों जांघ में दोनों को बैठाकर वह तरह तरह की हँसी-दिल्लगी करने लगा। इतने में एक बन्दर बहुत सी बंदरियों को साथ लिये हुए वहाँ आया और आनन्द से आमविलास करने लगा। यह देख, अभयने सुवर्ण रेखा से पूछा,—"इस बन्दर को क्या ये सब स्त्रियाँ प्यारी ही हैं?"

वेश्याने कहा,—"बन्दरों में इसकी कौनसी चीज पूछते हो? इनमें कोई इसकी माता होगी, कोई बहन होगी, कोई पुत्री होगी। आखिर ये जानवर ही तो हैं!"

यह सुन, [illegible] का दिल बिल्कुल [illegible] हो गया। उसने बड़े आवेश से कहा,—"जब पशु [illegible] विचार है, जिसमें [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है।"

[illegible]

है। जरा अपने पैरोंके पास तो देख, तू अपनी माँ और पुत्रों को अपने [illegible] मारकर दोनों बगल बैठाये हुए है और एक जिसको समुद्र में फेंक आता है, तू क्या बड़-बड़ करता है? क्यों क्यों मेरी निन्दा करता है!" यह कह, वह बन्दर अपनी टोलीमें जा मिला।

इसके इन वचनोंसे [illegible] के हृदय में बड़ा भारी आघात हुआ। उसने अपने मनमें विचार किया,—"ओह! यह अनोखा बन्दर कैसी ठीक बात कह गया! समुद्र में [illegible] हुई हैं। यह लड़की मेरी पुत्री कैसे हुई! यह सुवर्ण [illegible] मेरी माता [illegible] हुई। मेरी माता [illegible] की [illegible] —इसके [illegible] था। यह सुन्दरी [illegible] है। यह [illegible] मेरी माता हो सकती है। [illegible] मेरी पुत्री [illegible] हो सकती है [illegible]

[illegible]

पानी की थाह पाये, कोई चतुर आदमी कभी पानी के अन्दर नहीं जाता। इसी तरह विचारवान् पुरुष ऐसे कामों में हाथ ही नहीं डालते, जिनमें भय की आशंका हो।

ख़ैर, बहुत इधर-उधर घूमता हुआ वह एक मुनिके पास पहुँचा। वहाँ पहुँच कर उसने बड़े भक्ति भावसे मुनिको प्रणाम कर कहा,—"स्वामी! बन्दर ने मुझे बड़े भ्रममें डाल रखा है। मेरा यह भ्रम छुड़ाइये।

मुनिने कहा,—"जैसे सूर्य इस पृथ्वीको प्रकाशित करता है, इसी तरह सारे संसारमें अपने ज्ञानका प्रकाश फैलाने वाले मेरे केवल-ज्ञानी गुरु इस देशमें हैं। अपने अवधिज्ञानके सहारे मुझे जो मालूम हुआ है, वही मैं तुमसे कहता हूँ। उस बानरने जो कुछ कहा है, वह सर्वज्ञ के वचन के समान सत्य है।"

श्रेष्ठीने कहा,—"सो कैसे? कृपाकर विस्तार पूर्वक सुना-कर मेरा भ्रम दूर कीजिये।"

मुनि,—"अच्छा, मैं जो कुछ कहता हूँ उसे खूब मन लगा-कर सुनो। तुम्हारा पिता अपनी स्त्री को छुड़ाने और उसकी छल पूर्वक हर ले जानेवाले राजा से बदला लेनेके इरादेसे कुछ सेना लेकर [illegible] नगर से बाहर निकला और समर [illegible] मार्गमें [illegible] ([illegible] राजा) के पास चला गया। वहाँ पहुँच कर उस [illegible] राज्य [illegible] कुमार [illegible] पिताने अपनी मुट्ठी में कर लिया और [illegible] बहुत बड़ी सेना लेकर श्री मन्दिरपुर की ओर भेजा। इस [illegible] [illegible] [illegible] मन्दिरपुर

लोग इधर-उधर भाग चले। तुम्हारी श्रीमती अपनी लड़कीको लेकर गंगा किनारे बसे हुए शिवपुर नामक नगरमें अपने पिताके घर चली गयी। वहाँ वह बहुत दिनों तक अपने भाई के घरमें रही, क्योंकि पतिके बिछुड़ने पर स्त्रियों को बाप भाई का ही सहारा रहता है। एक दिन आषाढ़ के महीने में तुम्हारी लड़की को एक जहरीले साँप ने काट खाया, जिससे वह बेहोश हो गयी। लोगोंने लाख उपचार किये; पर [illegible] फिर नहीं उठी। साँपके काटे हुए मनुष्य को तुरन्त नहीं जलाना चाहिये, क्योंकि यदि आयु हुई, तो वह फिर जी उठ सकता है, यह सोच कर उसकी लाशको [illegible] एक [illegible] सुन्दर डोंगीमें रख कर [illegible] गंगाजी में बहा दिया। [illegible]

[illegible]

"जो हो, राजा सुरकान्त प्राण लेकर भाग गये। तब बेचारी सोमश्रीको—अर्थात् तुम्हारी माता को—उस पल्ली-पतिके भील-सैनिकोंने पकड़ लिया। इसके बाद सारे नगरमें भयङ्कर लूट पाट मचाकर वह सेना अपने-अपने डेरे-तम्बुओं में जाकर विश्राम करने लगी। बेचारी सोमश्री दिन-भर उन्हीं सैनिकों के पास पड़ी रही और रातको मौक़ा पाकर निकल भागी। जंगल-जंगल भटकते-भटकते उसने एक जंगली पेड़का फल खा लिया, उसे खाते ही वह बड़ी गोरी और ठिंगने क़दकी हो गयी। सच है, मणि, मन्त्र और औषधिके गुणोंकी कोई थाह नहीं पा सकता। इसी समय उस राहसे जाते हुए कुछ व्यापारियों की दृष्टि उस पर पड़ गयी। उन्होंने उसे सुन्दर और अकेली देख, अचरजमें आकर पूछा,—"तुम देवाङ्गना हो, नाग-कन्या हो, वनदेवी हो, स्थलदेवी हो, जल-देवी हो या कौन हो? तुम मानवी तो नहीं मालूम होती।' यह सुन, वह बड़ी दीनता के साथ बोली,—"मैं कोई देवी नहीं हूँ, बल्कि तुम्हारी ही तरह हाड़ माँस की बनी हुई मानवी हूँ। यह रूप ही मेरे अन्धकूप में पड़ने का कारण बन गया है। भाग्य के दोषसे यह गुण भी मेरे लिये दोष ही हो गया है।' यह सुन, उन्होंने कहा,—"अच्छा, आओ, तुम हमारे साथ चलो—हम लोग तुम्हें बड़े आराममें रखेंगे, यह कह, वे लोग बड़ी प्रसन्नताके साथ उसे अपने घर ले चले और रत्नकी भाँति उसकी रक्षा करने लगे।

"कुछ दिन बीतते न बीतते उन लोगों की नियत बिगड़ गयी

और प्रत्येक व्यापारी उसको [illegible] देखकर उसे अपनी [illegible] [illegible] लगा। [illegible] देखकर किनारे मुंहसे [illegible] कहीं [illegible] लगते ! अस्तु, वे लोग [illegible] [illegible]। वहाँ उन्होंने [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible]

"उसके नाचने गानेकी तमाम शुहरत फैल गयी। राजाने भी यह प्रशंसा सुनी और उसको बुलवाकर उसका नाच-गान देखा, फिर तो वे उसपर ऐसे लट्टू हुए, कि उन्होंने उसे अपनी चमर-धारिणी बना लिया। इस लिये हे श्रीदत्त! यह स्त्री तुम्हारी माता ही है। कर्म-धर्म-संयोगसे इसका ऐसा रूप हो गया है। रूप रङ्ग में फ़र्क़ पड़ जानेपर पहचानना बड़ा कठिन हो जाता है। इसीसे तुम उसे नहीं पहचान सके, परन्तु उसने तुम्हें पहचान लिया, लेकिन लोभ और लज्जा के मारे कुछ भी नहीं बोली। सचमुच लोभ बड़ा ही बुरा होता है। धिक्कार है, इस वेश्या-वृत्तिको, जिसके कारण अपने बेटेको पहचान कर भी माता उसके साथ भोग विलास करने के लिये तैयार हो गयी। ऐसी निकृष्ट वेश्याओंकी पण्डितोंने जो इतनी निन्दा की है, वह उचितही है।

जब मुनि महाराजने इस प्रकारकी कथा सुनायी, तब तो श्रीदत्तको बड़ाही विस्मय और विषाद हुआ। उसने हाथ जोड़कर कहा,—"हे तीनों जगत् का हाल जानने वाले! यह सब हाल उस बन्दर को कैसे मालूम हुआ? मुझ अन्धकूप में गिरने वालेका उद्धार करनेके लिये उसने क्योंकर मनुष्योंकी सी भाषामें मुझे चेतावनी दी?"

मुनि महाराज बोले,—"तुम्हारा पिता सामश्री का ही ध्यान करता हुआ, लड़ाईमें तीर खाकर मारा गया था, इसी लिये वह मरकर प्रेत योनि को प्राप्त हुआ। वहां घूमता-फिरता तुम जहां

जंगलमें बैठे हुए थे, वहाँ आ पहुँचा। आते ही उसने देखा, कि तुम तो अपनी माता का ही पैदा समझ कर उनपर रीझे हुए हो। इसी लिये उसने उस बन्दर के शरीरमें प्रवेश कर तुम्हें ऐसा उपदेश दिया। दूसरे जन्ममें चले आनेपर भी पिता माता पुत्रको आपसकी ममता दूर नहीं होती। यह बन्दर बना हुआ देव अभी अपनी पुरानी प्रीतिके कारण तुम्हारे देखते-देखते इस स्त्री को अपनी पीठपर चढ़ाकर ले जायेगा।"

मुनि महाराज ने इतना कहा ही था, कि वह बन्दर आया और [illegible] लिये [illegible] (दुर्गा) को अपनी पीठपर बैठा लेता है। दोनों तुम्हारे देखते अपनी पीठपर बैठाकर ले चला। देखते देखते वे [illegible] आँखोंसे ओझल हो गये।

अहह! यह कैसी विचित्र लीला है! कैसा आश्चर्य है [illegible] विचित्र है। [illegible], फिर कुमार और [illegible] हुए [illegible] [illegible]।

सातवाँ परिच्छेद

इधर सुवर्ण रेखाको लेकर जब श्रीदत्त वनमें चला आया, तब सुवर्णकी दासियोंने घर आकर उसकी माँ (बूढ़ी नायका) से कहा,—"श्रीदत्त नामक एक व्यापारी पचास हजार रुपये देना स्वीकार कर उसे लेकर जंगलमें चला गया है।" यह सुनकर वह बड़ी प्रसन्न हुई, पर जब सुवर्ण रेखाके लौटने में बड़ी देर हुई; तब उसने दासियोंको सुवर्ण रेखाका समाचार लानेके लिये भेजा। दासियाँ उसी समय सुवर्ण रेखाकी खोजमें निकल पड़ीं।

बड़ी देरतक इधर-उधर खोज-ढूंढ़ करते रहनेके बाद उन्होंने श्रीदत्त को एक दूकान पर बैठा देख, उसके पास जाकर उससे सुवर्ण रेखाका समाचार पूछा। श्रीदत्तने चटपट उत्तर दिया,—"मैं क्या जानूं, कि कहाँ गयी? मैं क्या उसका कोई गुलाम था, जो उसके पीछे पीछे डोलता फिरता और देखता चलता कि वह कहाँ जाती और क्या करती है।"

दासियोंने बुढ़िया के पास ज्यों की त्यों सभी बातें कह सुनायीं सुनतेही वह कोधसे अन्धी हो गयी और राजासे फर्याद

करने आयी, आकर बड़ी विनयके साथ कहने लगी,—"महाराज! मैं तो लुट गयी—एकबारगी लुट गयी- बरबाद हो गयी—किसी काम लायक नहीं रही।" राजाने पूछा,—"क्यों! क्या हुआ। कैसे लुट गयी! क्योंकर लुट गयी! किसने लूटा!

बुढ़िया बोली,—"मेरी सोनेसी सुन्दर सुवर्ण रेखाको श्रीदत्त नामका व्यापारी चुराकर ले आया।"

राजा ने तुरंतही श्रीदत्तको बुला भेजा और उसके आनेपर

राजाने तुरतही श्रीदत्तको बुला भेजा और उसके आनेपर इस चोरीके सम्बन्धमें पूछना आरम्भ किया। परन्तु उसने यही सोचकर कुछ जवाब नहीं दिया, कि यदि मैं सच्ची बातको बतलाऊंगा, तो ये लोग नहीं मानेंगे। क्योंकि कहा हुआ है, कि—

"असम्भाव्यं न वक्तव्यं प्रत्यक्षं यदि दृश्यते।
यथा वानरसंगीतं यथा तरति सा शिला॥"

अर्थात् —यदि अनहोनी बात देखने में [illegible] किसीसे न कहे [illegible] जैसे यदि कोई बन्दरके [illegible] पत्थरको पानीमें तैरते देखा भी हो, तो [illegible] [illegible] है।

इस पर बुढ़िया [illegible] और उन्होंने श्रीदत्तको कैदखानेमें [illegible] कर लिया। [illegible]

में लाकर दासियों के साथ रख दिया। सच है, विधाता और राजाको मित्रताका कोई विश्वास नहीं। इनके दोस्त और दुश्मन बनते देर नहीं लगती।

अब श्रीदत्तको क़ैदख़ानेमें बड़ी तकलीफ़ होने लगी, तब उसने एक पहरेदारकी मार्फ़त राजाके पास यह कहला भेजा, कि मैं सारा हाल सच-सच बतला देनेको तैयार हूँ। यह सुन, राजाने उसे क़ैदख़ानेसे बुलवा मँगवाया और सारा हाल बयान करनेको कहा। उसने कहा,—"महाराज! उस स्त्रीको तो जंगलका एक बन्दर ले गया।" यह सुनते ही सारे दरबार के लोग ख़ूब ज़ोर से ठहाका मार कर हँसने लगे। सब लोग विस्मयके साथ कहने लगे,—"अजी, कहीं ऐसा भी हो सकता है? यह सब इस बुड्ढेकी चालबाज़ी है।" सबको ऐसा कहते सुन और आप भी उसकी बातका विश्वास नहीं करते हुए राजाने उसे प्राणदण्डका हुक्म दे दिया। ठीक ही कहा है, कि बड़े आदमियोंके रंज और ख़ुश होनेमें क्या देर लगती है?

राजाका हुक्म पाकर कई जल्लाद उसे पकड़कर वधभूमिकी ओर ले चले। वहाँ पहुँचकर श्रीदत्त अपने मनमें विचार करने लगा,—"ओह! मित्रका वध करने और माता तथा पुत्रीके साथ भोग करनेकी इच्छा करनेसे ही मुझे यह दण्ड आज मिल रहा है। मेरा पाप तत्काल फल गया। विधि-विडम्बना तो देखो, कि मैं सच कहनेपर भी मारा जाता हूँ। जैसे उमड़ते हुए समुद्र को कोई पार नहीं पा सकता, वैसेही कुटिल विधाताकी गतिमें

अब तो सबको विश्वास हो गया, कि श्रीदत्तने जो कुछ कहा था वह बिलकुल ठीक था। इसके बाद उन लोगोंने मुनि महाराजसे सब पूर्व-वृत्तान्त पूछ कर मालूम कर लिया। तदनन्तर सरल और स्वच्छ हृदयवाले श्रीदत्तने पूछा,—"प्रभो! मुझे कृपाकर यह बतलाइये, कि अपनी माता और पुत्रीपर मेरा क्योंकर अनुराग हो गया?"

गुरुने कहा,—"इसके बारेमें जाननेके लिये तुम्हें पूर्व जन्मका वृत्तान्त मालूम होना चाहिये। उसे मन लगाकर सुनो—

आदिनाथ-चरित्र।

अगर आप आदिनाथ भगवानका सारा जीवन चरित्र देखना चाहते हैं तो हमारे यहाँसे मंगवाइये। इस चरित्रके पढ़नेसे आपको जैन धर्मका सारा रहस्य मालूम हो जायेगा। पुस्तकके भीतर सत्तरह मनोरञ्जक चित्र दिये गये हैं, जिनसे भगवानका जीवन हू-बहू सामने दिख जाता है। भाषा भी सरस और सरल लिखि गई है। जिससे सामान्य बुद्धि मनुष्य भी यथेष्ट रीतिसे समझकर ज्ञान सम्पादन कर सकता है। एक बार मंगवा कर अवश्य देखिये। मूल्य सजिल्द ५) अजिल्द ४)

पता—पंडित काशीनाथ जैन

मुद्रक, प्रकाशक और पुस्तक विक्रेता

हरिसन रोड, कलकत्ता।

हो गया। उसने अपनेमनमें विचार किया,—"ओह! मुझे धिक्कार है, जो मैं अपने ऐसे विश्वासी मित्रको मारनेके लिये तैयार हो गया। ओह! मैं बड़ा ही नीच हूं।" यही सोचकर उसने अपने मित्रको मारनेके लिये उठाया हुआ हाथ नीचे कर लिया।

"जैसे खुजलानेसे खुजली बढ़ती जाती है, वैसेही ज्यों-ज्यों लाभ होता जाता है त्यों-त्यों लोभ बढ़ता जाता है। इसी नियम के अनुसार वे लोग द्रव्योपार्जन करते हुए पुनः देशमें भ्रमण करने लगे। कभी-कभी लोभ एकही क्षणमें—एकही पलमें—घोर अनर्थ कर डालता है। एक दिन वे दोनों लोभी ब्राह्मण कृष्णा नदी में पैठे। एकाएक नदीमें बाढ़ का जानेके कारण वे दोनों ही डूब गये। मरने बाद वे बहुतसो तिर्यंच-योनियों में भ्रमण करते फिरे। बहुत दिनों बाद उन्होंने मनुष्यका जीवन पाया और फिर दोनों मित्र ही हुए। चैत्रका जीव तो तुम हो और मैत्रका जीव यही शंखदत्त था। पूर्वजन्ममें उसने तुम्हारी हत्या करनेका विचार किया था, इसी लिये इस भवमें तुमने उसे समुद्रमें डाल दिया। जैसे सूद पर दिया हुआ रुपया फिर सूद समेत मिल जाता है, वैसेही एक भवमें मनुष्य जो-जो कर्म करता है, उसका फल दूसरे जन्ममें सूद समेत मिल जाता है।

"मस्तु जब तुम नदीमें डूब गये, तब तुम्हारी दोनों स्त्रियाँ-गंगा और गौरी तुम्हारे वियोगसे बड़ाही दुःखित हुईं। उन्होंने सारा भोग विलास छोड़, वैराग्य धारण कर लिया और महीने-भरका उपवास करनेवाली तापसी हो गयीं। वास्तवमें विधवा

किया। इस क्रोधका धिक्कार है, जिससे मनुष्यको इस प्रकार दोष लग जाता है। यह क्रोध सब जप-तप और सत्कर्मोंका नाश कर देता है।

"कुछ दिन बाद एक वेश्याको बहुतसे कामी पुरुषोंके साथ भोग विलास करते देखकर गङ्गाने अपने मनमें विचार किया,—'यह धन्य है, जो इस प्रकार जूहीकी तरह खिली हुई बहुतसे रसिया भौरोंका जी खुश करती है। मैं बड़ीही अभागिनी हूँ, क्योंकि मेरे स्वामी भी मुझे छोड़कर चले गये।' इस प्रकार बुरे विचार मनमें आनेसे उसकी आत्मामें दुष्कर्मोंका कीचड़ लग गया। सच है, मूर्खता मोहसे भी बढ़कर दुर्मंत्र होती है।

"क्रमशः ये दोनों स्त्रियाँ मरकर ज्योतिष्कोंमें जाकर, देवी हुई। वहाँसे च्युत होनेपर ये तुम्हारी माँ और पुत्री होकर उत्पन्न हुई। उस भवमें साँप काटनसे मर जानेका बात दासी से कहनेके कारणही तुम्हारी पुत्रीको इस भवमें साँपने काट खाया और कैदका बात कहनेके कारण तुम्हारी माता भीलों द्वारा कैद की गयी। पूर्व जन्ममें तुम्हारी माताको वेश्याका वैभव देखकर लालच हुआ था, इसीसे वह इस जन्ममें वेश्या हुई। पूर्व जन्ममें किये हुए कर्मोंके प्रभावसे अनहोनी बातभी हो जाता है। मन और वचनसे किये हुए कर्मोंका फल अवश्य भोगना पड़ता है। पूर्व जन्ममें ये दोनों तुम्हारी स्त्री थीं, इसी लिये इनके साथ सम्भोग करनेकी तुम्हें इच्छा हुई; क्योंकि पूर्व जन्मके अभ्यास-के कारण अगले जन्ममें वैसा संस्कार होता है पूर्व जन्ममें

गुरुके ऐसे वचन सुन, वह चकित भावसे चारों ओर देखने लगा, इसी समय उसे दूरसे आता हुआ उसका मित्र दिखाई दिया। उसे आते देख, श्रीदत्तने शर्मसे सिर झुका लिया। इधर शंखदत्तको श्रीदत्तपर दृष्टि पड़तेही बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ और वह उसे मारने दौड़ा, किन्तु राजा आदि को देखकर सहम गया और चुपचाप खड़ा हो गया। यह देख, गुरुदेवने कहा,—"शंखदत्त! क्रोध मत करो। क्रोधकी अग्नि अपने आपको ही जला देती है। क्रोधकी उपमा पण्डितोंने चाण्डालसे दी है। इस चाण्डाल का कभी स्पर्श भी नहीं करना चाहिये। इस चाण्डालको छूनेसे लाख गंगा नहानेपर भी आदमी शुद्ध नहीं होता।"

गुरुके मुखसे निकली हुई यह अमृत-वाणी सुनकर शंखदत्त वैसेही शान्त हो गया, जैसे जल पड़नेपर अग्नि शान्त हो जाता है। इसके बाद श्रीदत्तने उसका हाथ पकड़कर उसे अपने पास बैठाया। इसके बाद उसने गुरुसे पूछा,—"महाराज! मेरा यह मित्र किस तरह समुद्रसे निकल आया, सो कृपाकर बतलाइये।"

मुनिवरने कहा, समुद्रमें गिरतेही इसके [illegible] तख्ता हाथ लग गया। सच है जिसका आयु पूरा नहीं होता, वह मौतके मुँह [illegible] भी बच जाता है। [illegible] अनुकूल [illegible] हुआ यह [illegible] समुद्रके किनारे [illegible] पहुँचा। [illegible] इसी [illegible] इस तरह [illegible] समुद्रका पानी पीनेसे

"हे प्राणियो! तुम सदा धर्म का आचरण करनेकी ही चेष्टा करते रहो, क्योंकि सर्व श्रेष्ठ अर्थों की सिद्धि और सम्यक्त्व तथा देश-विरति आदि गुण धर्मकेही वशमें हैं। अन्यान्य धर्म और उत्तम कर्म अच्छा फल देते हैं सही, पर यह जैन-धर्म तो सदा, सब प्रकार, सबसे श्रेष्ठ, कल्पवृक्षके समान है।"

यह देशना श्रवणकर, राजा इत्यादि जितने मोक्षार्थी वहां बैठे थे, उन सब लोगोंने सम्यक्त्व पूर्वक देश-विरति श्रावकपने अङ्गीकार कर लिया। यह प्रेम और सुरथ्वो देवा भी सम्यक्त्व प्राप्त करनेमें समर्थ हुए और पूर्व भवके प्रेमके कारण उनके दिव्य और औदारिक शरीरका संयोग बहुत दिनों तक बना रहा।

इसके बाद राजाके परम प्रेम-पात्र शोहस्तने अपनी कन्या और आधी सम्पत्ति शीलध्वजको दे डाली। बालीका आधा द्रव्य उसने निर्मल बुद्धिके साथ अच्छे कामोंमें व्यय किया और अन्त में वाली गुरुके पास आकर चारित्र ग्रहण कर लिया। फिर तो वह नाना स्थानोंमें विहार करता हुआ, मोहराजाका पराजय कर, चारों घाती कर्मों का विनाशकर, यहां आ पहुंचा और यहीं इन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ। हे महाराज मृगध्वज! मैं ही वह शीलध्वजमुनि हूं। जिसका कथा मैंने अभी तुम्हारी आगेको सुनाया है। हे शुकराज! [illegible] कि मैंने तुमको अभी सुनाया है, मेरी [illegible] पर तुम्हारे [illegible] और [illegible] हूं। इस लिये इसमें [illegible] नहीं है क्यों कि यह तो [illegible]

मी उजियाले पाखके चन्द्रमाकी तरह बढ़ने लगा। क्रमशः यह लड़का पाँच बर्षका हुआ और जैसे रामके पीछे-पीछे लक्ष्मण डोलते फिरते थे, वैसेही यह भी गुणराजके पीछे-पीछे डोलने लगा। एक दिन राजा अपने दोनों पुत्रोंके साथ दरबारमें बैठे हुए थे। उसी समय ड्योढ़ीदारने आकर खबर दी,—"महाराज! अपने शिष्योंके साथ शार्दूल ऋषि द्वार पर आये हैं।" यह सुन, राजाको बड़ा विस्मय हुआ और उन्होंने ऋषिको शीघ्र बुला लानेकी आज्ञा दी। उनके आने पर राजाने उन्हें बड़े आदरसे सुन्दर आसन पर बैठाते हुए प्रणाम किया। मुनिने भी दिल खोलकर कल्याणकारी आशीर्वाद दिया। इसके बाद राजाने उनसे तीर्थ और आश्रमका समाचार पूछनेके बाद वहाँ आनेका कारण पूछा। उस समय कमलश्यामलको बुलवाकर, मुनि कहने लगे,—"राजन्! आज रातको स्वप्नमें गोमुख यक्षने मुझसे कहा, [illegible] मैं ना अब निम्नलिखित नामक मूल तीर्थको जाता हूँ। इस पर मैंने पूछा कि अब इस नगरकी रक्षा कौन करेगा? उसने कहा, कि तुम्हें [illegible] और [illegible] समान गुण-राज और [illegible] [illegible] हुए हैं, वे बड़े ही [illegible] हैं [illegible] नहीं है [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] कहा, [illegible] हुए हैं, इसलिये मैं इसी पुत्रके [illegible] यह सुनकर [illegible] यहाँ

दर्शन करनेके लिये आना चाहता हूँ। इसलिये यदि आपकी आज्ञा हो, तो मैं ही जाऊँ। यदि ऐसा हो, तो मुझे वैसाही आनन्द होगा, जैसा मोरनीके प्रेमीको मृदंगकी ध्वनि सुनकर, भूखेको भोजन पाकर और नींदमें अलसाये हुएको कोमल सेज पाकर, होता है।"

अपने बड़े बेटेकी यह बात सुन, राजाने अपने मन्त्रीकी ओर देखा—मानों उनसे राय पूछी। राजाका मतलब ताड़कर मन्त्रीने कहा,—"महाराज! जहाँ बोलनेवाले स्वयं शार्दूल ऋषि, देनेवाले आप, रक्षाकी जानेवाली वस्तु तीर्थ-भूमि और रक्षाके लिये जानेवाले स्वयं राजकुमार गुणराज, वहाँ दूसरा कौन नहीं कर सकता है? यह बात तो बड़ीही उचित प्रतीत होती है। इसलिये आप प्रसन्न मनसे राजकुमारको जाने दें।"

इसके बादही पिताकी आज्ञा पा, राजकुमार गुणराज, बड़े आनन्दके साथ, पिताके चरणोंकी वन्दना कर, ऋषिके साथ-साथ चल पड़े। थोड़ेही समय बाद राजकुमार उस तीर्थमें पहुँच गये। उनके आतेही इस आश्रमके सब दुष्टोंकी वृत्ति [illegible] गयी [illegible] और [illegible] बन गया था। पूर्वमें किये हुए [illegible] इसीसे [illegible] हो जाता है।

[illegible] एक दिन [illegible] किसी [illegible] गुणराज [illegible] हृदय

पापके योगसे मेरा शरीर बड़ी व्याधि पा रहा है। मैंने गिरतेही मारे तकलीफ़के उस लड़कीको और साथ-ही-साथ अपनी दुष्ट-बुद्धिको छोड़ दिया। फिर तो जैसे बाज़के हाथसे छूटकर चिड़िया भाग जाती है, वैसेही वह लड़की भाग गयी। लोभ और मोहमें पड़कर मैंने तो अपना शरीरभी गँवाया।"

यह सुनतेही शुकराज बड़े प्रसन्न हुए; क्योंकि वे तो इसी विद्याधरको ढूँढ़ रहे थे। उसकी बातोंसे वे समझ गये, कि वह लड़कीभी आसही पास कहीं होगी। यही सोचकर वे चारों ओर उसे खोजने लगे। खोजते-खोजते वह एक जगह एक मन्दिरके भीतर बैठी हुई मिल गयी। यह देख, उसे मधुर वचनोंसे ढाढ़स और विश्वास दे, राजकुमार शुकराज उसे धाई माँके पास ले गये। दोनों एक दूसरीको देखकर बड़ी प्रसन्न हुईं। उन्हें सुखी कर, राजकुमार उस विद्याधरके पास चले आये और दवा-दारू तथा सेवा-शुश्रूषा करके उसका रोग भी दूर करनेका उपाय करने लगे।

क्रमशः वह विद्याधर नीरोग होगया और शुकराजका बिना मोलका गुलाम हो गया। पुण्यकी महिमा बड़ी विचित्र होती है। एक दिन शुकराजने उस विद्याधरसे पूछा,—"तुम्हारी वह नभोगामिनी विद्या—जिसके सहारे तुम आसमानमें उड़ते थे—है कि नहीं?" उसने कहा,—"विद्या तो है परन्तु काम नहीं करती। अगर कोई सिद्ध विद्यावान मनुष्य अपना हाथ मेरे सिरपर रखकर पुनः मुझे वह विद्या सिखला दे, तो फिर वह फलवती हो जायेगी।"

शुकराजको और भी प्यार करने लगे। कुछ दिन बाद राजा शत्रुमर्दनने अपनी लड़की शुकराजको व्याह दी। सच है, प्रीति इसी तरह धीरे-धीरे बढ़ती जाती है। बड़ी धूम धामसे विवाह हुआ। राजाने वरको बहुतेरा द्रव्य दान दिया। राजाके अनुरोधसे शुकराज अपनी नव-विवाहिता पत्नीके साथ आनन्द-विलास करते हुए कुछ दिन ससुरालमें ही रह गये।

जैसे सभी रसोली चीज़े लवण पड़नेसे ही स्वादिष्ट लगती हैं, वैसेही इस लोकमें सभी काम पुण्य द्वारा ही अच्छे फल देनेवाले होते हैं। इसलिये सांसारिक कार्योंके करनेके साथ-ही-साथ मनुष्यको कुछ धर्मके कार्योंकी भी चिन्ता और आचरण करना चाहिये। यही सोचकर एक दिन शुकराज, राजाकी आज्ञा ले, उसी विद्याधरके साथ-साथ वैताढ्य-पर्वतपर चैत्य-वन्दन करने चले। वैताढ्य-पर्वतकी वह अनुपम शोभा देखते हुए वे दोनों क्रमशः गगनवल्लभ पुरमें आ पहुँचे। वहाँ पहुँच-कर उस विद्याधरने अपने माता-पितासे शुकराजके किये हुए उपकारकी बात बतलायी। यह सुनकर उसके माता-पिता बड़े ही प्रसन्न हुए और उन्होंने अपना लड़का शुकराजको व्याह दी। बड़ी धूमधामसे व्याह हुआ। विद्याधरोंके राजाने उनसे कुछ दिन वहीं रहनेको प्रार्थना की। नाथ दर्शनमें चित्त लगा हुआ होने पर भी राजकुमार शुक उनके आग्रहसे कुछ दिन वहीं रह गये।

कुछ दिन बाद, एक दिन राजाकी आज्ञा ले, दोनों साले-बहनोई, एक विमानपर बैठकर तीर्थ वन्दन करने चले। इसी

पास लौट आओ और अपने दर्शनामृतसे अपनी माताको सुखी करो। जैसे सेवक स्वामीका अनुसरण करते हैं, वैसेही सुपुत्र अपने माता-पिताका, सुशिष्य अपने गुरुका और कुलवधुएँ अपनेसे बड़ोंका अनुसरण करती हैं। माता-पिता अपने सुखके ही लिये पुत्र उत्पन्न करते हैं। फिर यदि पुत्रसे उन्हें दुःख ही हुआ, तो यही समझना होगा, कि जलसे आगही निकली। देखो, माता पितासे भी बढ़कर माननीय होती है। शास्त्रकारोंने माताको पितासे हजार गुणी बड़ी बड़ी बतलाया है। कहा भी है, कि—

> 'ऊढ़ो गर्भः प्रसवसमये सोढमत्युग्रशूलं,
> पथ्याहारैः स्नपनविधिभिः स्तन्यपानप्रयत्नैः।
> विष्ठामूत्रप्रभृतिमलिनैः कष्टमासाद्य सद्यः,
> त्रातः पुत्रः कथमपि यया स्तूयतां सैव माता।'

अर्थात्—'जिसने नौ महीनों तक गर्भमें रखा, प्रसवके समय बहुत बड़ी वेदना सही, पथ्याहार-पूर्वक रहते हुए सदा बच्चोंको पुष्ट दूध पिलाया, पाखाना-पेशाब आदि साफ करने का कष्ट उठाती रही,—इन सब कष्टोंको सहते हुए भी जिस माता- [illegible] पुत्रकी [illegible], वह धन्य है'

उसकी बात सुनतेही शुकराजकी आँखोंमें जल भर आया। उसने [illegible] देवि [illegible] नाथके इतने पास [illegible] बिना वहाँ [illegible] नमस्कार किये मैं क्योंकर पीछे लौट जाऊँ? जैसे लाख [illegible] काम होते हुए भी [illegible] अच्छे अच्छे [illegible] हुए पासको छोड़कर [illegible] जाना वैसेही [illegible] हजार अनुचित काम [illegible] भी अनेक

दसवाँ परिच्छेद

अब शुकराज सयाने हो चुके हैं। भविष्यतमें उन्हीं को गद्दी मिलनेवाली है। इसलिये राजा अभीसे उन्हें राजकाजके काम सिखला रहे हैं। इन दिनों वे बराबर राजदरबारमें आते और अपने पिताको राजकाजमें पूरी-पूरी सहायता देते हैं। वास्तवमें पुत्रका कर्त्तव्यही पिताकी सहायता करना है। बड़े सुखसे दिन बीतने लगे।

इसी तरह एक बार वसन्तऋतु का समय आया। यह ऋतु विलासियोंके लिये बड़ी ही आनन्ददायक होती है। राजा एक दिन अपने दोनों पुत्रों और समस्त परिवारके साथ बाग़की सैर करनेके लिये गये। वहाँ सब लोग लाज-सङ्कोच छोड़कर अलग अलग मनमानी मौजें कर रहे थे। इतनेमें बड़े ज़ोरका कोलाहल होने लगा। राजाने अपने एक सिपाही को इस शोर-गुलका कारण जाननेके लिये भेजा। उसने सब हाल दर्याप्त करके लौट आकर कहा,—"महाराज! सारङ्गपुर नामक नगर के राजा वीराङ्गका पुत्र शूर किसी पुराने वैरका बदला भंजानेके

दसवाँ परिच्छेद

अब शुकराज सयाने हो चुके हैं। भविष्यतमें उन्हीं को गद्दी मिलनेवाली है। इसलिये राजा अभीसे उन्हें राजकाजके काम सिखला रहे हैं। इन दिनों वे बराबर राजदरबारमें आते और अपने पिताको राजकाजमें पूरी पूरी सहायता देते हैं। वास्तवमें पुत्रका कर्त्तव्यही पिता की सहायता करना है। बड़े सुखसे दिन बीतने लगे।

इसी तरह एक बार वसन्तऋतु का समय आया। यह ऋतु विलासियोंके लिये बड़ी ही आनन्ददायक होती है। राजा एक दिन अपने दोनों पुत्रों और समस्त परिवारके साथ बाग़की सैर करनेके लिये गये। वहाँ सब लोग लाज-सङ्कोच छोड़कर अलग अलग मनमानी मौजें कर रहे थे। इतनेमें बड़े ज़ोरका कोलाहल होने लगा। राजाने अपने एक सिपाही को इस शोर-गुलका कारण जाननेके लिये भेजा। उसने सब हाल दर्याफ्त करके लौट आकर कहा,—"महाराज! सारङ्गपुर नामक नगर के राजा वीराङ्गका पुत्र शूर किसी पुराने वैरका बदला भंजानेके

इधरसे आपके पुत्र हंसके साथ लड़नेके लिये चला आ रहा है। यह सुन, राजा सोचने लगे,—"अजब तमाशा है। राज्य मैं कर रहा हूँ, राज्यकी सम्हाल शुकराज कर रहा है; वीराङ्ग मेरे अधीन है, फिर शूर और हंसमें वैर क्योंकर हुआ ?" ऐसा विचार कर राजा शुकराज और हंसराजको साथ लिये हुए आगे बढ़े। इतनेमें एक और सिपाहीने आकर कहा,—"महाराज! पूर्व जन्ममें हंसके जीवने शूरके जीवको बहुत दुःख दिया था, इसीलिये शूर हंससे लड़नेके लिये चला आरहा है।" यह सुनते ही वीर पुरुषोंमें शिरोमणि राजकुमार हंसने अपने पिता और भाईको आगे बढ़नेसे रोक दिया और आपही अकेले उससे लड़ने के लिये तैयार हुए। शूर भी तरह-तरहके हथियार लिये हुए युद्धके रथपर सवार हो, युद्ध-भूमिमें आ पहुँचा।

देखते-देखते दोनों वीर कर्ण और अर्जुनकी भाँति एक दूसरे पर हथियार चलाने लगे। बड़ी देरतक युद्ध होता रहा। तोभी उन दोनोंकी युद्ध करनेकी इच्छा पूरी नहीं होती थी। दोनों ही एक समान शूर, वीर, धीर और पराक्रमी थे। यह देख, विजय-लक्ष्मी भी बड़े संशयमें पड़ गयी, कि किसके गलेमें जयमाल डालूं। बड़ी देरकी लड़ाईके बाद हंसने ठीक उसी तरह शूरके सब हथियार काट डाले, जैसे इन्द्रने सब पर्वतोंके पर काट लिये थे। कुल हथियार कट जानेपर शूरका क्रोध और भी बढ़ा और वह वज्रके समान घूंसा ताने हंसको मारने दौड़ा। यह देख, राजा मृगध्वज बड़ी शङ्कामें पड़कर शुकराजकी ओर देखने लगे।

पिताका मतलब समझकर शुकराजने अपनी विद्या हंसके शरीर में प्रविष्ट कर दी। उस विद्याके प्रभावसे हंसने उसी समय शूरको तिनकेकी तरह उठाकर फेंक दिया। वह गिरतेही मूर्च्छित हो गया। बड़ी देरतक उसके सेवकोंने उसके चेहरे-पर पानीके छींटे दिये, तब कहीं जाकर उसे होश हुआ। परन्तु क्रोध करनेका कोई फल नहीं निकला—उलटे दुःखही हुआ, यह देखकर वह अपने मनमें विचार करने लगा,—"मुझे धिक्कार है। मैंने क्रोध करके व्यर्थही इस जन्ममें भी अपमान सहा और अगले जन्ममें भी रौद्र-ध्यानसे बँधे हुए पाप-कर्मके कारण अनन्त दुःख भोग करूँगा।" ऐसा विचार कर वह राजा मृगध्वज और उनके दोनों पुत्रोंके पास आकर माफ़ी माँगने लगा। यह देख, अचम्भेमें पड़े हुए राजाने पूछा,—"तुमने अपने पूर्व-जन्मका हाल क्योंकर जाना?"

वह कहने लगा,—"महाराज! एक दिन श्रीदत्त केवली मेरे नगरमें आये हुए थे। उनसे मैंने अपने पूर्व जन्मका हाल पूछा,तो उन्होंने कहा,—

'पूर्व समयमें भद्दिलपुर नामक नगरमें जितारि नामके राजा रहते थे जिनके हंसी और सारसी नामकी दो रानियाँ थीं और सिंह नामका एक प्रधान मन्त्री था। बड़ा कठिन प्रण करके वे लोग तीर्थ-यात्रा करने चले और काश्मीरदेशमें गोमुख यक्षके दिखलाये हुए विमलागिरि तीर्थमें श्रीजिनेश्वरको प्रतिमाको प्रणाम करनेके बाद वहीं एक सुन्दर नगर बसाकर परिवार-

धिक्कार देने लगा। उसने सोचा,—"अधिकार का मद कैसा प्रबल होता है! अधिकार पाकर मनुष्य इतना घमण्डसे भर जाता है कि हरदम मनमानी करनेको तैयार रहता है। फिर तो वह कोई काम सोच-समझकर—उसके परिणामका विचार कर नहीं करता। पराये दुःखोंपर तो उसकी निगाहही नहीं जाती। अपने आगे वह और सभी लोगों को तुच्छ ही समझता है।"

"यही सब सोचता-विचारता हुआ वह उसी जङ्गलमें घूमने लगा। पर तो रास्ता नहीं मालूम—दूसरे कलाकार पक्की रहने पर भी खाने-पीनेका कोई ठिकाना नहीं, इसलिये एक दिन भूखे-प्यासे भटकते-भटकते उसकी मृत्यु हो गयी। वह मरिश्च-पुरके राजकी एक जगह नाग होकर रहा। एक दिन संयोग-वश अहिच्छत्रपुरके राजा वहाँ पहुँच गये, बस उसने उन्हें तुरत काट खाया, जिससे उनकी तत्काल मृत्यु हो गयी। होते होते वही मरे [illegible] वीरांगु राजाका पुत्र हुआ है और [illegible] पूर्वजन्मके दुष्ट पुण्योंके अनुसार विमलाचल-तीर्थके सरोवरका हंस हुआ। वहाँ तीर्थके अतिशयका देखकर उस हंसको जाति-स्मरण हो आया और वह दिन रातकी भांति वह कुछ दिनों [illegible] तिर्यञ्चके द्वारा [illegible] करने लगा। [illegible] वह मरनेके [illegible] तीर्थके अतिशयका [illegible] करनेके [illegible] इस प्रकार [illegible] और पूर्व [illegible] करनेके [illegible] देखकर [illegible] देखता हो

ये एक जगह बैठे हुए यही सब सोच रहे थे, कि इतनेमें एक मौजवान आदमीने वहाँ आकर उन्हें प्रणाम किया। उन्होंने पूछा,—"भाई! तुम कौन हो?" यह राजाके इस प्रश्नका उत्तर देनाही चाहता था, कि इतनेमें बड़े ज़ोरसे आकाशवाणी हुई, कि "हे राजन्! आप निश्चयही इसे अपनी रानी चन्द्रावती काही पुत्र जानें, इसमें सन्देह न करें। यदि इसमें आपको कुछ सन्देह हो, तो यहाँसे पाँच योजन दूर दो पर्वतोंके बीचमें जो कदली-वन है, उसीमें कायोत्सर्ग धारण किये हुई वहीं रहने वाली यशोमती नामकी योगिनीसे सारी बातें पूछ ले सकते हैं।"

यह आकाशवाणी सुनतेही राजा उस पुरुषके साथ-साथ झटपट ईशान-दिशाकी ओर चल पड़े। वहाँ पहुँचकर उन्होंने सचमुच कदली-वनमें योगिनीको बैठे देखा। राजाको देखतेही वह योगिनी बड़े प्रेमके साथ बोली,—"हे राजा! तुमने जो कुछ सुना है, वह सोलह आने सच है। इस संसार रूपी जंगल का सफ़र करना बड़ा ही कठिन कार्य है। परन्तु तुम्हारे जैसे तत्त्वज्ञानी भी इसके मोहमें पड़ जाते हैं, यही बड़े भारी आश्चर्य की बात है। इसके विषयमें मैं तुम्हें सब बातें शुरूसे सुनाती हूँ। ध्यान देकर सुनो।

"चन्द्रापुरी नामक नगरीमें चन्द्रमाके समान उज्ज्वल यश-वाले सोमचन्द्र नामक एक राजा थे। उनकी स्त्रीका नाम भानु-मती था। हैमवन्त क्षेत्रमें सौधर्म-देवलोकमें गये हुए युगल आत्माएँ उन्हीं भानुमतीके गर्भसे उत्पन्न हुए। एक पुत्र और

एक कन्या हुई। पुत्रका नाम चन्द्रशेखर और कन्याका चन्द्रा-
वती रक्खा। ज्यों-ज्यों दोनोंकी अवस्था बढ़ने लगी, त्यों-त्यों
उनके शरीरका सौन्दर्य बढ़ता गया और दोनों एक दूसरेको
देख-देखकर [illegible] याद करते हुए समय बिताने लगे।
क्रमशः दोनोंने युवावस्थामें पैर रक्खा। तब राजाने पुत्रकी शादी [illegible]
[illegible] एक राजकुमारीके साथ और कन्याकी शादी कुमारके
साथ कर दी। परन्तु पूर्व जन्मके संस्कारके कारण दोनों का मन
एक दूसरेसे ऐसा मिला हुआ था, कि दोनों परस्पर प्रेम-चि-
न्तन करनेकी इच्छा [illegible] कर रहे थे। सच है, पर पूर्व
जन्मका संस्कार और [illegible] ही [illegible] होता है। [illegible]
[illegible] है, कि
[illegible] हो जाते हैं।

[illegible]

"यह सुन, उस यक्षने उसे एक अञ्जन देकर कहा,—'लो, इसे आँखोंमें लगानेसे तुम अदृश्य हो जाया करोगे। फिर तो जब तक राजा मृगध्वज चन्द्रावतीके पुत्रको अपनी आँखों नहीं देखेंगे, तबतक तुम खूब मौजके साथ उसके साथ सुख भोग करते रहोगे। पर हाँ, जिस दिन राजा उस पुत्रको देख लेंगे, उस दिन यह सारा भेद खुल जायेगा।' यह कह, वह यक्ष अन्तर्धान हो गया। चन्द्रशेखर खुशी-खुशी रानी चन्द्रावतीके महलमें गया। अञ्जन लगाकर अदृश्य बने हुए उसने एक मुद्दत तक वहाँ आनन्दसे रानीके साथ भोग-विलास किया। काल पाकर चन्द्रावतीके गर्भसे चन्द्रांक नामका पुत्र पैदा हुआ। उस अञ्जनके प्रभावसे उस पुत्रकी पैदायशका हाल भी किसीने नहीं जाना। पुत्रके पैदा होतेही चन्द्रशेखर उसे लिये हुए अपनी स्त्रीके पास चला गया और उसीपर उसके पालन-पोषणका भार सौंप दिया। वह भी ठीक अपने पेटके बच्चेकी तरह उसका पालन-पोषण करने लगी। सच है, भली स्त्रियाँ अपने पतिके कर्म-धर्मकी ओर न देख केवल अपने कर्त्तव्यकी ओर देखती हैं। उनका काम पतिपर पूर्ण रूपसे प्रेम रखते हुए उसकी आज्ञाका पालन करना ही है। चाहे पति दूर रहे या निकट पर उनका प्रेम निरन्तर एकसा बना रहता है। यद्यपि चन्द्रशेखर एक इन्द्रियलम्पट परनारीगामी बना रहा और जाया भी एक व्याही मित्र बनाया, तथापि यशोमतीने, इसपर कुछ भी ख्याल नहीं किया और बड़े प्रेमसे इस बालकका पालन पोषण करना आरम्भ कर दिया। कुल-वधुओंकी यही रीति है।

"पर स्त्रीका मन बड़ा ही चञ्चल होता है। वह कभी एकसाँ नहीं बना रहता। कारण पाकर उसके विचारो और बुद्धिमें हेरफेर होही जाता है। यशोमतीका भी यही हाल हुआ। जब वह बालक बढ़ता-बढ़ता जवान हो गया, तब पति-वियोगसे पीड़ित यशोमतीके विचारोंने भी पलटा खाया। उसने सोचा-'जब मेरे स्वामी चन्द्रावतीकी चाहमें चूर होकर निरन्तर मुझे छोड़, उसीके पास पड़े रहते हैं, और मैं उनका मुँह भी नहीं देख पाती, तब मैं भी क्यों नहीं इस सुन्दर युवाके साथ मनमानी मौज उड़ाऊँ? ऐसा विचार कर, विवेक और विचारको ताक पर रख, उसने चन्द्राङ्क को अपने पास बुलाकर कहा,-'चन्द्राङ्क! यदि तू मेरे साथ रमण करे, तो यह सारा राज्य तेरा हो जायेगा।'

"उसके ऐसे वचन सुन, चन्द्राङ्क तो मानो आसमानसे ही गिरा। उसने चकित होकर कहा,—'माता! ऐसी अनुचित, अनहोनी और अनखौती तुम्हारे मुँहसे क्योंकर निकली?'

"वह बोली,—'हे सुन्दर! मैं तेरी माता नहीं हूँ। तेरी माता तो राजा मृगध्वजकी रानी चन्द्रावती है।'

"उसकी यह बात सुन, उसकी प्रार्थनाको पैरोंसे ठुकराकर वह असल हाल जाननेके लिये घरसे बाहर हो गया और आपकी खोजमें इधर-उधर भटकता हुआ आज आपके पास आही पहुँचा।

"उधर पति और पुत्र, दोनोंको खोकर यशोमतीको अपने

पूर्ण विचारपर बड़ी ग्लानि हुई और वह घर-द्वार छोड़ योगिनी बन गयी। वही यशोमती इस समय आपके सामने बैठी है। मैंने सच-सच सब हाल आपको सुना दिया। उसी यक्षने आकाश-वाणी द्वारा आपको मेरे पास आनेकी आज्ञा दी है।"

यह सारा वृत्तान्त श्रवण कर राजा मृगराजको मोहके साथ-ही-साथ बड़ा भारी खेद हुआ। सच है, ऐसे वृत्तान्त देखकर किसके चित्तमें दुःख नहीं होता? राजाका यह हाल देख, वह योगिनी फिर कहने लगी,—"देखिये, इस संसारमें पुत्र मित्र, स्वजन, धन, धन आदि चीजें सभी क्षण-भङ्गुर और विनाशवान हैं, तथापि अज्ञानी जीव इन्हें ही अपना समझकर इनपर ममता करता है। जो प्राणी आत्म शक्तिका आश्रय कर, मिथ्यात्वके मार्गोंको छोड़ कर, योगक्रियामें विचार कर, शुद्ध मार्ग अङ्गीकार करता है, वही इस संसारके पार उतरता है। राजन्! यह संसार बड़ा ही गहन, अथाह और अपार है, इसलिये इसके असल स्वरूपको जानकर आत्मा, मनन और समर्थ योगको स्थिर कर ईश्वरसंबंधी आचरण करना चाहिये। संसारमें मग्न होकर, लोगोंमें [illegible] और अज्ञानमें पड़कर मनुष्य [illegible] [illegible] दुःख [illegible] है और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible]

मद, मत्सर, और हर्ष रूपी छः भीतरी शत्रुओंको वशमें करना ही मनुष्यके लिये उचित है। इसीसे शुद्ध आत्म-स्वभाव प्रकट होता है और मनुष्य सहजही संसारके पार पहुँच जाता है।"

योगिनीकी ऐसी वैराग्य-पूर्ण बातें सुन, राजाका चित्त बहुत कुछ शान्त हुआ और वे चन्द्राङ्कको साथ लिये हुए अपने नगरके बागीचेमें आये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने चन्द्राङ्कको नगरमें भेज दिया और वहांसे अपने पुत्र और प्रधान इत्यादिको बुलवा कर कहा,—"जैसे गुलाम बनकर आदमी घोर कष्ट पाता है, वैसेही इस संसारकी दासता करके मैंने भी बड़े दुःख उठाये। अब मैं जाकर दीक्षा ग्रहण करता हूँ। अब मैं तुम्हारे नगरमें पैर न रखूँगा। इस लिये मेरे पीछेमें मेरा यह राज्य शुकराजको ही देना।"

मन्त्रियोंने कहा,—"महाराज! आप कृपा कर घर चलें। इसमें कौनसा दोष है? निर्मोही मनुष्यके लिये तो घर भी जङ्गल है और मोहित मनुष्यके लिये जङ्गल भी घर ही है। मोह ही मनुष्यके लिये बन्धन स्वरूप है। जिसने मोह छोड़ दिया, उसके घर चलनेमें क्या दोष है?"

उन लोगोंका यह आग्रह देख, राजा सबके साथ घर आये वहां चन्द्रशेखरने चन्द्राङ्कको राजाके साथ आते देख लिया। यक्षकी बात याद आ जानेके कारण वह उसी समय चुपचाप वहांसे निकल भागा। इसके बाद राजा मृगध्वजने बड़ी धूम-धामसे शुकराजको राज्य देकर प्रव्रज्या अङ्गीकार कर ली। दीक्षा लेनेका विचार करतेही राजाके मुखडेपर एक विचित्र

प्रकारकी शोभा विराजने लगी। सच है, चन्द्रमाका उदय होने पर रात्रि प्रकाशमान होही जाती है। रातभर राजा इसी सोच में पड़े रहे, कि कब सवेरा हो और मैं दीक्षा ग्रहण करूं ! कब मैं निरतिचार सहित चारित्रका पालन करता हुआ विचरण करूंगा और कब मेरे सब कर्मोंका क्षय होगा ! इसी तरहके विचारमें राजा एकबारगी लीन हो गये, रातभर इसी तरह शुभ भावना करते-करते प्रातःकाल होते-न-होते उनके कुल कर्मोंका क्षय हो गया और सूर्यके साथही साथ उनके केवल-ज्ञानका उदय हो आया। ऐहिक सुखके लिये किया हुआ कार्य कदाचित् विफल भी हो जाये; पर धर्मके स्वरूपका चिन्तन या उसके आचरणका सङ्कल्प-मात्र करनेसेही मनुष्यको इष्ट वस्तुकी प्राप्ति हो जाती है। इसी तरह राजा मृगध्वजको भी बिना परिश्रमकेही केवलज्ञानकी प्राप्ति हो गयी। इस लिये प्रत्येक मनुष्यको चाहिये, कि शुभ ध्यानमें प्रवृत्त हो कर धर्मके स्वरूपका चिन्तन करनेकी चेष्टा करें।

समग्र भावको जाननेवाले मृगध्वज-केवली को साधुका वेश अर्पण करनेके लिये देवताओंने वहाँ केवल ज्ञानका बड़ा भारी उत्सव किया। शुकराज और प्रजा आदि यह समाचार पा, बड़े हर्ष के साथ वहाँ आये। उस समय राजर्षि मृगध्वजने यह अमृत-समान देशना प्रदान की :—

"हे भव्य प्राणियो ! यह संसार एक बड़ा भारी समुद्र है। इसके पार उतरनेके लिये साधुधर्म और श्राद्ध-धर्म—येही दोनों

भली भाँति प्रजा-पालन करने लगे। महादुरात्मा चन्द्रशेखर अबतक चन्द्रावतीसे मिलना जुलना नहीं छोड़ता था। जिसमें निष्कण्टक मौज करनेमें आये, इसके लिये वह शुकराजकी बुराई करनेकी फ़िक्रमें रहने लगा। उसने बड़ी-बड़ी मुश्किलोंसे तपस्या कर उस राज्यकी अधिष्ठात्री गोत्रदेवीको प्रसन्न कर लिया। कामान्ध मनुष्य क्या-क्या नहीं करता! देवीने प्रकट होकर कहा,—"बेटा! तूने किस लिये मेरी आराधना की? जो चाहे, वह माँग ले।"

चन्द्रशेखरने कहा,—"मुझे शुकराजका राज्य चाहिये।"

देवीने कहा,—"जिस प्रकार कोई सिंहके सामनेसे उसका आहार नहीं छीन सकता, वैसेही सम्यक्त्व-गुणसे सुशोभित शुकराजके राज्यको मैं उससे छीनकर तुम्हें नहीं दे सकती।"

चन्द्रशेखर—"यदि तुम सचमुच देवी हो और मेरे ऊपर प्रसन्न हो, तो छलसे, बलसे, जैसे हो सके, वैसे मुझे वह राज्य दिलवा दो।"

यह सुन, उसकी भक्तिसे सन्तुष्ट देवीने कहा,—"यहाँ बलकी कोई कला काम नहीं आयेगी छलसेही काम लेना होगा। जब शुकराज कहीं और चला जायेगा, तब मैं वहाँ आऊँगी। मेरे प्रभावसे तुम्हारा रूप शुकके समान हो जायेगा। फिर तुम मौज के साथ राज्य करना।"

यह कह, वह देवी अदृश्य हो गयी। चन्द्रशेखरने बड़ी खुशी के साथ यह समाचार जाकर चन्द्रावतीको कह सुनाया।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

एक दिन शुकराजने यात्रा करनेके विचारसे अपनी दोनों स्त्रियोंको अपने पास बुलाकर कहा,—"मैं तीर्थ दर्शन करनेके इरादेसे उसी आश्रमकी ओर जाना चाहता हूँ।"

यह सुन उनकी स्त्रियोंने कहा,—"हम दोनों भी आपके साथ ही चलेंगी; क्योंकि एक तो हम आपके साथ रहेंगी, दूसरे, रास्तेमें माँ-बापसे भी मिलना हो जायगा।"

लाचार, शुकराजने उनकी बात मान ली और उन्हें लिये हुए विमानपर बैठकर चल पड़े। उनसे भूल यही हुई, कि और किसीसे उन्होंने अपनी इस यात्रा की बात नहीं कही। इसीलिये और लोग इस बातसे बिलकुल ही अनजान रहे। चन्द्रावतीको यह बात मालूम हो गयी; क्योंकि वह इन दिनों शुकराजपर हर घड़ी निगाह रखती थी।

चन्द्रावतीसे खबर पाकर चन्द्रशेखर उसी समय उस नगरमें आ पहुँचा। देवीके वरके अनुसार वह ठीक शुकराजकी शकल-सूरतका हो गया। इस लिये सब लोग उसको शुकराज समझने

लगे। रातके समय चन्द्रशेखर झूँठमूठ शोर मचाने लगा, कि दौड़ो—दौड़ो—कोई विद्याधर मेरी स्त्रियोंको लिये जा रहा है। यह शोर सुनकर सब लोग दौड़ पड़े और उसके पास आकर पूछने लगे,—"स्वामी! आपकी वे विद्याएँ क्या हो गयीं? उन्हीं से काम लीजिये न।"

यह सुन, चन्द्रशेखरने झटपट उत्तर दिया,—"मैं क्या करूँ? उस दुष्ट विद्याधरने ठीक उसी तरह मेरी विद्याएँ हरलीं, जैसे यम मनुष्योंके प्राण हर लेता है।"

उन लोगोंने कहा,—"ख़ैर, स्त्रियाँ और विद्याएँ गयीं, तो क्या हुआ; आपका शरीर तो बच गया। हम लोगोंको इसीकी ख़ुशी है।"

इस प्रकार चन्द्रशेखरने सब लोगोंपर अपने कपटका जाल फैलाकर सबको इस बातका विश्वास दिला दिया, कि यही शुकराज है। बस, फिर क्या था? वह मौजसे साथ चन्द्रवती के साथ भोग-विलास करने लगा।

इधर तीर्थोंका दर्शन कर, कुछ दिन अपनी ससुरालमें रहनेके बाद शुकराज अपने नगरको लौट आये और पहले उपवनमें ही ठहरे। चन्द्रशेखरने महलकी खिड़की पासही से उन्हें देखकर शोर गुल मचाना शुरू किया। उसके बाद अपने आदमियोंको बुलाकर बोला,—"जिस विद्याधरने मेरी स्त्रियोंको चुराया था, वही मेरा रूप धारण कर आया हुआ है। इस लिए तुम लोग उसके पास जाकर उसे मीठी मीठी बातोंसे भुलावा देकर पीछे लौट जानेको कहो, क्योंकि बुद्धिमान् का कहना है कि बलवान्को

अपनी मीठी-मीठी बातों से ही राज़ी कर ले। तुम लोग चतुर मन्त्री और सलाहकार हो। तुम्हारे लिये यह काम कुछ कठिन नहीं है।" यह सुन, मन्त्री आदि सभी लोग बाहर चले आये।

सेवकों अपने पास आया देख, शुकराज विमानसे नीचे आकर उसी आमके पेड़के नीचे बैठ गये। यह देख, मन्त्रीने उनके पास पहुँचकर कहा,—"हे विद्याधरोंके राजा! आपकी शक्ति और सामर्थ्य अपार है। आपने हमारे स्वामीकी स्त्रियों और विद्याओंका हरण कर लिया है—इसलिये हम आपका प्रभाव भली भाँति जानते हैं। अब आप कृपा कर अपने स्थानको लौट जाइये। हमारे स्वामीने बड़ी विनयके साथ आपसे यही निवेदन करनेके लिये हमें आपके पास भेजा है।"

यह सुनतेही शुकराज मन-ही-मन सोचने लगे,—"ये सब पागल तो नहीं हो गये हैं! इन ऊटपटाङ्ग बातोंका क्या मतलब?" इसी तरह नाना प्रकारके सङ्कल्प-विकल्प करते हुए शुकराजने कहा—"मन्त्री! तुम क्या कह रहे हो? शुकराज—तुम्हारा राजा तो मैं ही हूं।"

मन्त्री,—"हे विद्याधर! हमें आप क्यों ठग रहे हो। मृगध्वज राजाके पुत्र शुकराज तो अपने घरमें ही मौजूद हैं। आप तो उन्हींका रूप धारण करने वाले विद्याधर हैं। बहुत कहने-सुननेका क्या काम है! हमारे स्वामी शुकराज आपसे वैसेही डरे हुए हैं, जैसे बिल्लीको देखकर चूहा डरता है। इसलिये आप शीघ्रही यहांसे सिधार जाइये।"

इसलिये सुख और दुःख तथा सम्पत्ति और विपत्तिको कर्माधीन समझकर इन्हें विरागमें नहीं पड़ना चाहिये।

इसी तरह विमानमें बैठकर घूमते-फिरते हुए एक दिन उनका विमान नीचे गिर पड़ा। यह विघ्नकर विघ्न आयी हुई देख, गुणराज इसका कारण ढूँढने लगे, तो उन्होंने देखा, कि सुवर्ण-कमलके ऊपर बैठे हुए, देवताओंसे सेवित मुनिराज केवली बैठे हुए हैं। जिनके दर्शन कर, उन्होंने प्रसन्न मनसे उन्हें प्रणाम किया। भामहीं अपना दुःख याद कर उनकी आँखोंमें आँसू आ गया। सच है, दुःखकी अवस्थामें अपना आदमी देख कर रुलाई आही जाती है। केवलज्ञानीने अपने ज्ञान बलसे उनका सारा हाल मालूम कर लिया। तोभी गुणराजने उनसे सब हाल कह सुनाया; क्योंकि मनुष्य अपने माँ बाप, प्रिय-मित्र, स्वामी और अपने आश्रित मनुष्योंसे अपने दुःखकी कहानी सुनाकर उसका बोझा हल्का करता है।

गुरुने कहा,—"तूने जैसा कर्म कर आये हो, उसका फल तो भोगना ही पड़ेगा। फिर इसमें पछताने और खेद करनेसे तो कोई लाभ नहीं है।"

यह सुन गुणराजने कहा,—"भगवन्! मैंने पूर्वमें कौन ऐसा बुरा काम किया, जिसका मुझे यह फल मिला?"

गुरुने कहा,— "[illegible] [illegible] मुनि थी [illegible] [illegible] और [illegible] ठाकुर थे। [illegible] [illegible] पति देवसे

धन्वन्तरीका सा वैद्य पाकर भी रोग रह जाये, यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है। घरमें कल्पवृक्ष मौजूद रहते हुए दरिद्रता कैसे रह सकती है? सूर्योदय होनेपर भी अन्धकारका नामो-निशान थोड़े ही रह जाता है? इसलिये हे स्वामी! आप कृपाकर ऐसा कोई उपाय बतलाइये, जिससे मेरा यह दुःख दूर हो और मेरा गया हुआ राज्य लौट आये।"

उनकी यह प्रार्थना सुन, केवलज्ञानी महाराजने कहा,—"हे शुकराज! धर्म करने से दुःसाध्य कार्य भी सुसाध्य हो जाता है। पासही विमलाचल तीर्थ है। वहीं जा, तीर्थनायक प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव स्वामीको नमस्कार कर, भक्ति पूर्वक उनकी स्तुति करनेके अनन्तर छः महीनेतक उसी पर्वतकी गुफामें रहते हुए परमेष्ठि-महामन्त्रका जप करो। इससे तुम्हारे सब शत्रु तुम्हें देखते ही भाग खड़े होंगे, उनका किया हुआ कपट निष्फल हो जायेगा, और तुम्हें सब तरहकी सिद्धि प्राप्त होगी। जिस समय गुफाके भीतर भी प्रकाश फैल जाये, उसी समय समझ लेना कि तुम्हारा कार्य सिद्ध हो गया। बस यह अभीष्ट सिद्धि का भी अन्यतम एक ही उपाय है।"

यह बात सुनकर शुकराज बड़े प्रसन्न हुए और विमान पर बैठकर विमलाचल तीर्थ चले आये और प्रथम तीर्थंकर देवकी वन्दना कर गुफामें बैठे हुए परमेष्ठि-महामन्त्रका जप करने लगे। इसी तरह छः महीने बीत जानेपर एक दिन उन्होंने अपने चारों ओर बड़ा भारी प्रकाश फैलता देखा।

उसी समय युवराजके भाग्योदयके साथ-साथ चन्द्रशेखरकी गोरखेलीकी महिमा भी घट गयी। उसने प्रकट होकर चन्द्रशेखरसे कहा,—"चन्द्रशेखर! अब तू जल्द यहाँसे भाग जा। अब मेरा युवराजवाला रूप नष्ट हो चुका चाहता है।" यह कह कर वह चली गयी और चन्द्रशेखर फिर अपने मसल करने का गया। यह देख कर युवती ज्ञान लेकर चोरकी तरह भाग गया। युवराज भी जब तुरत बाद, अपने नगरमें आये। अबकी बार उसने पहले ही राज भार लिया और इसका खूब आदर सत्कार किया। अब सब लोग जान गये कि यह कोई युग आदमी था, जो इस तरह उपद्रव [illegible] हुए था। परन्तु इसका और कोई [illegible] किसीसे नहीं जाना।

[illegible]

सार्थक नाम रख दिया। उस दिनसे इस पर्वतका यह नाम पृथ्वी तलमें प्रसिद्ध हो गया। जिनेश्वर भगवान्के दर्शन करने से चन्द्रशेखरको भी अपने पाप कर्मोंपर पछतावा होने लगा। उसने सब कर्मोंका क्षय कर, केवलज्ञानी मुनीश्वरसे पूछा,—"हे भगवन्! मेरे मनका मैल कैसे धुलेगा?"

मुनीश्वरने कहा,—"अपनेसब पापोंको अच्छी तरह याद करते हुए इस तीर्थमें रहकर निरन्तर तप करनेसे तेरे सब पाप धुल जायेंगे और तेरा मन निर्मल हो जायेगा। कहा भी है, कि—

जन्मकोटिकृतमेकहेलयाकर्म तीव्रतपसा विलीयते।
किं न दाह्यमपि बहुपि क्षणा दुच्छितेन शिखिनात्र दह्यते!

अर्थात्—कठिन तपस्या करनेसे करोड़ों जन्मका किया हुआ पाप सहज ही नष्ट हो जाता है चाहे कैसी भी कड़ी चीज़ क्यों न हो और संख्यामें कितनी ही अधिक क्यों न हो; पर आग उसे जलाही देती है। इसी तरह तप भी पापों को जलाकर खाक कर देता है।"

मुनि महाराजकी यह बात सुन, वैराग्य प्राप्त कर चन्द्रशेखरने अपने सब पापोंकी आलोचना करते हुए मृगध्वज केवली से दीक्षा अङ्गीकार कर ली। इसके बाद वह बड़ा उग्र तपस्या करता हुआ उसी तीर्थपर मोक्षको प्राप्त हुआ।

अहा! तीर्थ-भूमिकी भी कैसी विशाल महिमा है। जिस मनुष्यने एक मुद्दततक अपनी बहनके साथ व्यभिचार किया, वह भी तपस्या करके शीघ्रही मुक्ति पा गया। यह तीर्थकी ही बलिहारी है!

उपसंहार

अब निष्कण्टक होकर राज्य करते हुए युवराज अत्यन्त अर्हन्त-धर्मके सेवक और सम्यग्दृष्टि राजा-ओंके लिये आदर्श-स्वरूप हो गये। वे द्रव्य-शत्रु और भाव शत्रु—इन दोनोंको ही जय करते हुए धर्मसंचय, राज्यका सदा संरक्षण। वे दोनों प्रकारकी पूजाएँ करते और साधु-सन्तों, श्रावक-श्राविका—इन चारों संघोंकी भक्ति करते और अनेक प्रकारसे त्रिलोक [illegible] की पूजा करने लगे। [illegible] और बन्धुओंके मित्र और [illegible] किये हैं [illegible] उनको [illegible]। कुछ दिन बाद रानी [illegible] पुत्र हुआ, जिसका नाम [illegible] रखा गया। इसके बाद रानी [illegible] देवीके भी एक पुत्र हुआ, जिसका नाम [illegible] रखा गया। पुत्र मिलने ही [illegible] होता है, इस [illegible] अनुसार वे दोनों पुत्र होनेसे [illegible] प्रसन्न हुए।

इसके [illegible] करते हुए [illegible] बुद्धि-मान और [illegible] राज्य [illegible] दिया [illegible] का [illegible] करते हुए [illegible]

के साथ जंगलकी ओर चले गये। सबसे पहले उन्होंने शत्रुंजय-तीर्थ में ही जानेकी इच्छा की। उस तीर्थपर पहुंचतेही उन्हें केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ। सच है, महात्माओंको पदार्थोंका लाभ भी बड़े विचित्र ढंगसे होता है। इसके बाद बहुत दिनों तक पृथ्वीमें विहार करते हुए प्राणियोंके अज्ञानान्धकारका नाश करनेके अनन्तर शुकराज केवलीने अपनी दोनों स्त्रियों के साथ मोक्ष प्राप्त किया।

बस, पाठको! हमारा यह चरित्र यहीं समाप्त होता है। अब हम आपसे विदा होनेके पहले यही कहना चाहते हैं, कि सदा अच्छे गुणोंका संग्रह करनेमें शुकराजने इस संसारमें भी सुख पाया और अन्तमें मोक्षपद भी प्राप्त किया। इस लिये मनुष्यको चाहिये, कि सदा अच्छे गुणोंको अपने जीवनमें लानेकी चेष्टा करे। तीर्थकी महिमा ऐसी प्रबल है, कि उसीके द्वारा शुकराजने अपना गया हुआ राज्य पाया और शत्रुओंका नाश कर डाला। महाराजा चन्द्रशेखरने भी तीर्थमें आकर तपस्याके द्वारा अपने दुष्कर्मोंका क्षय किया। इसलिये तीर्थ और मन्त्र, जप और तपमें सदा प्रीति रखनी चाहिये। इससे पापी भी पुण्यात्मा बन जाता है। फिर जो आदमी आपही अच्छा है, उसको इन पुण्य-कर्मोंका आचरण करने से कितना लाभ होगा, यह सोचनेकी बात है।